डा॰ राम मनोहर लोहिया

दृष्टि-संकल्प-कर्म

श्री भगवान् सिंह एम. ए.

डा० राममनोहर लोहिया

दृष्टि, संकल्प, कर्म
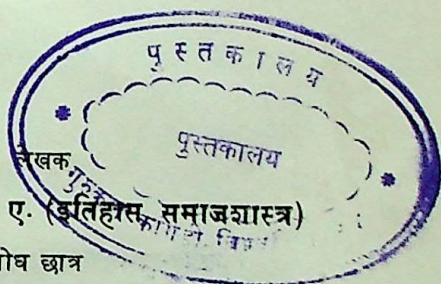
लेखक
श्री भगवान् सिंह, एम. ए. (इतिहास, समाजशास्त्र)
शोध छात्र
काशी विश्वविद्यालय

समता प्रकाशन
बलिया

प्रकाशक :

समता प्रकाशन

ग्रा० पो० टोलाफखरुराय

बलिया, यू० पी०

लोहिया विचार ग्रन्थमाला, संख्या-१

मुद्रक :

अमर प्रिंटिंग प्रैस,

८/२५ विजय नगर,

दिल्ली-६

उन तमाम लोगों को जिन्होंने

डा० राममनोहर लोहिया

को

समझा था, समझते हैं,

समझने की कोशिश करते रहेंगे ।

कहने की बातें

११ अक्तूबर, १९६७ को रात के १ बज कर ५ मिनट पर दिल्ली के विलिंगडन अस्पताल में जीवन संघर्षरत डॉ० राममनोहर लोहिया ने अन्त में मौत से हार स्वीकार कर ली। दिल तो यह स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुआ, पर रेडियो, अखबार देश के नेताओं बुद्धिजीवियों की श्रद्धांजलियों ने ऐसा स्वीकार करने को बाध्य कर दिया। काशी विद्यापीठ में एम. ए. इतिहास प्रथम वर्ष,का छात्र था। बुखार से पीड़ित था। इसी दिन कुछ दिनों के बाद अन्न खाया था। समाचार सुन कर अपने को सम्भाल नहीं सका। आँसुओं को रोकने में असमर्थ ही रहा। फलस्वरूप शरीर पर बुखार ने पुनः विजय प्राप्त कर ली। क्यों ऐसा हुआ कह नहीं सकता? लेकिन ऐसा जरूर महसूस हुआ कि आज ज़िंदगी की कोई बहुमूल्य चीज़ खो गई। हालांकि मैं कभी डा० लोहिया से व्यक्तिगत तौर पर सम्पर्क स्थापित नहीं कर पाया था उन से बातें करने का कभी अवसर नहीं मिला। फिर सवाल उठता है कि ऐसे व्यक्ति के चले जाने पर मैं अपने आप को क्यों नहीं सम्भाल सका। पर उसी दिन मुझे अन्तःकरण से ऐसा आभास हुआ कि मुझे उन के विचारों, सिद्धांतों के ऊपर कुछ लिखना है। उन के विचारों से नजदीक से परिचित होना है और दूसरों को अवगत कराना है। यह क्यों? इस का कारण बताने में मैं स्वयं अपने आप को असमर्थ पाता हूँ। पर इसी में उलझा हुआ हूँ।

डॉ० राममनोहर लोहिया को सर्वप्रथम मैंने उस समय देखा था जब कि ७वीं कक्षा का जयनारायण इन्टर कालेज, बनारस में छात्र था। मेरे बड़े भाई श्री रामेश्वर सिंह ने लोहिया जी को घर पर खाना खिलाने के लिए निमन्त्रित किया था। डा० लोहिया सीधे सारनाथ से मेरे घर आए थे। उसी समय मैंने उन्हें सर्वप्रथम देखा। मुझे याद है वे हमेशा मुस्कराते ही रहते थे और अपने अन्य मित्रों से बहुत ही प्रश्न मुद्रा में बातचीत करते थे। यही मैंने उन्हें करीब से देखा। पर उन्हें उतना ही जान पाया जितना कि एक ७वीं कक्षा का छात्र जान पाता है। इस के बाद मैं उनसे कभी नहीं मिला था।

पर हाँ इतना ज़रूर है कि जब भी कभी बनारस में या मेरे अपने जिले बलिया में उनका भाषण का आयोजन होता तो उसमें शामिल होता था। और उनके विचारों से अवगत होता। पर अखबारों में यह देख कर बहुत ही दुःख होता था कि उनके विचारों को हमेशा तोड़ मरोड़ कर जनता के सामने पेश किया जाता था। जिससे लोहिया के सम्बन्ध में जनता की धारणा ग़लत बनी रहे। पर लोहिया के लिए यह अचरज की बात नहीं थी। क्योंकि उन्होंने अरस्तू, मार्क्स आदि व्यक्तियों के देश के शासक वर्ग के सम्बन्ध को पढ़ा था। इससे उनको संतोष था। इन महान् व्यक्तियों को उनके अपने ही देश के शासक-वर्ग ने अरस्तू को रोम में विष का प्याला दिया और मार्क्स को उनके अपने ही देश जर्मनी से निकाल दिया था। पर इन महान् विचारकों के सिद्धांतों का निखार उनके मरने के बाद ही जनमानस पर छा गया।

पर लोहिया के जीवन के अन्तिम समय में ही धीरे-धीरे जनता उनके मूल विचारों से अवगत होती गई, और उनको ही सच्चे हृदय से सर्वहारा वर्ग के महान् नेता के रूप में स्वीकार करने लगी थी। वे ही एक अकेले ऐसे नेता रहे जिन्होंने अपने लिए नहीं बल्कि देश के करोड़ों लोगों के लिए अपना जीवन निछावर किया। घर बार बची सम्पत्ति आदि को ग़रीबों में बाँट कर देश-सेवा में जुट गए। कभी गौतम बुद्ध को भी घर छोड़कर ऐसा करना पड़ा था। पर बुद्ध ने तो विवाह भी किया था और २९ वर्ष की यौवन अवस्था में घर छोड़ा इसी लिए कई लोगों ने उनके ऊपर यौवन अवस्था में स्त्री के त्याग का आरोप लगाया है। पर लोहिया के लिए कोई आरोप नहीं है। वे तो विद्यार्थी-जीवन को समाप्त कर गृहस्थ जीवन के प्रथम चरण में ही देश-सेवा में लग गए। परिवार बसाने के लिए विवाह भी नहीं किया। ऐसा विचार उनके मौत के बाद हिन्दुस्तानी और अन्य लोगों के दिल और दिमाग पर अमिट छाप के रूप में अंकित हो चुका है। पर इसका अन्दाज़ा लोहिया ने पहले ही लगा लिया था। इसीलिए उन्होंने कहा भी था "लोग मेरी बात सुनेंगे, शायद मेरे मरने के बाद। लेकिन किसी दिन सुनेंगे ज़रूर।" यह उनका दृढ़ आत्म-विश्वास था, जो इतिहास में स्थायी अवधारणा बनाए रखा है।

इस स्थान पर पुस्तक के बारे में दो शब्द कहना आवश्यक प्रतीत होता है। पुस्तक के आठ अध्याय हैं जो लोहिया के कार्य और विचारों का विश्लेषण करते हैं। डा० राममनोहर लोहिया आधुनिक भारत के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक बदलाव के आधार-शिल्पी हैं। आधुनिक भारत के मौलिक चिन्तक और विचारक हैं। मुझे कई विश्वविद्यालयों के प्रोफेसरों ने बतलाया

कि लोहिया ही हिन्दुस्तान के पिछले १०० वर्षों में महान् विचारक हुए हैं। उनके अन्दर अद्भुत, असीमित प्रतिभा थी। उनका हृदय बहुत ही कोमल और स्नेहमय था। वे ही भारत के एक ऐसे नेता रहे हैं जो वचन और कर्म के बीच समन्वय स्थापित कर पाए थे। उनके अन्दर ज्ञान, भक्ति (मानवता के प्रति) और कर्म का अद्भुत मेल था। वे एक सम्पूर्ण व्यक्ति थे। और इस सम्पूर्णता के लिए उन्होंने भारत माता से तीन महान् हस्तियों के महान् गुणों को माँगा था। जो उन्हें भारत माता से वरदान के रूप में मिला भी था। वे हस्तियाँ हैं राम, कृष्ण और शिव। लोहिया ने भारत माता से माँगा था—**ऐ भारत माता! हमें शिव का मस्तिष्क दो, कृष्ण का हृदय दो तथा राम का कर्म और वचन दो। हमें असीम मस्तिष्क और उन्मुक्त हृदय के साथ-साथ जीवन की मर्यादा से रचो।**

इस समय काशी विश्वविद्यालय में शोध-छात्र हूँ पर लोहिया के सम्बन्ध में ही पहली पुस्तक प्रकाशन होनी चाहिए, यह पहले ही से मान बैठा था। अतः अपने इस उत्तरदायित्व से मुक्त होने के लिए ही यह प्रथम कृति पाठकों के सामने जल्दी में रख रहा हूँ। इसमें मैं कितना सफल रहा हूँ स्वयं नहीं कह सकता। इसका फ़ैसला तो पाठक-गण ही कर पायेंगे। मैं अपनी तरफ़ से ग्रन्थ की त्रुटियों, आलोचना और विचारों को आमन्त्रित करता हूँ ताकि आगामी संस्करण उपयोगी बनाया जा सके। कहीं-कहीं ग्रन्थ में अशुद्धियाँ रह गई हैं आशा है इसके लिए पाठक-गण क्षमा करेंगे। आगे इन्हें दूर करने की कोशिश की जाएगी।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में जिन-जिन लोगों ने मुझे सहयोग दिया है उनका बहुत ही आभारी हूँ। पुस्तक के लिए कुछ चित्र संग्रह करने में नई दिल्ली के श्री कृष्ण शर्मा और दिनमान के सम्पादक श्री रघुवीर सहाय जी का आभारी हूँ जिन्होंने मुझे आगे भी कार्य करते रहने की प्रेरणा दी। इसके साथ ही साथ, श्री जगलाल सिंह, रमाकांत सिंह, कामताप्रसाद सिंह, पारसनाथ सिंह, रामप्रवेश सिंह, कृष्ण कुमार सिंह, छेदी सिंह, चन्द्रशेखर मिश्र, जगदीश सरीन, शिवनारायण शास्त्री, शुचिव्रत लखनपाल आदि का अनुग्रहीत हूँ। पुस्तक की अच्छी और जल्दी छपाई के लिए अमर प्रिंटिंग प्रेस के श्री अमरचन्द जी बधाई के पात्र हैं।

श्री भगवान् सिंह
टोला फ़खरुराय, बलिया
२-६-७२।

विषय-सूची

डा० राममनोहर लोहिया

जन्म : २३ मार्च १९१० निधन : १२ अक्तूबर १९६७

डा० राम मनोहर लोहिया

दृष्टि-संकल्प-कर्म

गोल चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखें और आँखों पर काला चश्मा, ऊँचा ललाट, रूखे शिर पर छोटे-छोटे बाल, श्याम मध्यम कद, ओठों पर सदैव मुस्कान किसी को भी लुभा सकने में सामर्थ थी। जो भी लोहिया के सम्पर्क में एक बार आ जाता था उसे लगता कि हम लोहिया के हो गये और लोहिया हमारे। चाहे वह कोई भी हो, उनके विचारों से सहमत हो या न हो फिर भी उनके सम्पर्क में आ जाने से वह उनसे उत्साहित और आकर्षित हो जाता था। यह लोहिया की एक प्रमुख विशेषता थी।

लोहिया ने जो रास्ता अपनाया था वह था सत्य की खोज का। सच्चाई के द्वारा समस्या के समाधान का। इसलिए यह रास्ता जोखिम का है, कठिन है। पर इसे हासिल करना असम्भव नहीं है। इस रास्ते पर वही चल सकता है जिसके अन्दर सम्यक् संकल्प, सम्यक्वाक्, सम्यक् दृष्टि और सम्यक् कर्मान्ति हो। लोहिया जीवन भर इसी रास्ते पर चलते रहे। इसीलिए उन्होंने जितना अपने अनुयायियों से सच्चे हृदय से स्नेह और प्यार पाया है उतना अन्य बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध की भारतीय राजनीति में किसी ने भी नहीं प्राप्त किया। इसका मुख्य कारण था लोहिया का विशाल हृदय, जो प्रेम और स्नेह का स्थल था। जहाँ स्वार्थ की कोई निशानी नहीं थी। अपने समर्थकों को, बिना अपनी व्यक्तिगत चिन्ता किये सदैव यह कोशिश करते रहे कि उन्हें कोई तकलीफ़ न हो। वह उनके सारे दुःखों को अपने ही कन्धों पर ढोना चाहते थे। अपने इन्हीं गुणों के कारण डा० लोहिया विभिन्न मतों के लोगों को एक छत्र के नीचे लाने में सफल रहे। लोहिया ने कभी भी अपने विचारों को किसी के ऊपर लादने की कोशिश नहीं की। वे सदैव वाक्स्वतन्त्रता के पक्षधर थे। पर हाँ वे इस बात को सुनने को तैयार नहीं थे जो स्पष्ट न हो। वे कभी भी लाग-लपेट की भाषा में बात नहीं करते थे और न किसी से इस की आशा ही रखते थे। चाहे वह उनके समर्थक हो, मित्र हों या विरोधी। वे

अपने सिद्धान्त पर अडिग रहते थे। उसी पर ही चलने का सपना देखते थे और उसको साकार बनाकर मूर्तिरूप देते थे। उनके मन के अन्दर अपने सिद्धान्त को लेकर किसी भी समय किसी से भी समझौता करने की बात तो आयी ही नहीं। उनके हर कार्य-क्रम और सिद्धान्त के ऊपर अपनी सम्यक् दृष्टि होती थी।

लोहिया इतने स्पष्टवादी थे कि वे किसी की भी ग़लती को माफ़ करने को तैयार नहीं थे। ग़लतियों की जम कर आलोचना करते थे। उनकी इन्हीं बातों को लेकर कांग्रेसी लोग उनसे सख्त नाराज़ रहते थे, उनसे रूठे हुए थे। कभी-कभी जनसमूह भी रूठ जाता था। पर वे अपना विचार जनसमूह के सामने ज़रूर रखते। चाहे कोई खुश हो या नाराज़। उनका यह एक विशेष गुण था। सत्य कटु होता ही है यह बात हमें लोहिया की स्पष्टवादिता से चरित्तार्थ होती है।

मेरा विश्वास है कि जो भी व्यक्ति लोहिया की कथनी और करनी पर ध्यान देगा, उनके पिछले व्याख्यानों पर दृष्टि रखेगा तो वह निश्चय ही यह तथ्य निकालने में समर्थ होगा कि लोहिया ने जो भी कहा है या जिधर दृष्टि रखी थी वह शत प्रतिशत सही सिद्ध हुई है। मेरा ख्याल है कि इतिहास उन के इन्हीं स्पष्टवादी गुणों को लेकर बुद्ध और गान्धी की श्रेणी में गिनेगा। बुद्ध को भी समाज के, राजनीति के बारे में अपने विचारों को रखते समय जन-आक्रोश का सामना करना पड़ा था। खास कर जाति-तोड़ो, जनभाषा का प्रयोग, छुआछूत मिटाने के कार्यक्रमों आदि में। हालाँकि कई बार उन्हें जानमाल का भी खतरा लेकर ऐसा करना पड़ा था। पर बुद्ध न तो समाज से घबड़ाये न उसके सामने झुके। वे बराबर अपने विचारों को स्पष्ट रूप में कहते रहे। इस प्रकार बुद्ध ने अपने विचारों की दृढ़ता से समाज का मुख परि-वर्तन के रास्ते पर मोड़ दिया। गान्धी जी की भी यही स्थिति रही। उन्होंने अपने जीवन का अधिक भाग आज़ादी की लड़ाई और समाज के परिवर्तन में लगाया। वे भी हरिजन उद्धार, छूआछूत मिटाने का कार्य करते रहे, जनभाषा, मानव-कल्याण, समता आदि के विषय में अपने विचारों को जनता के सामने रखते रहे। पर इसके लिये वे कोई भी ठोस संघर्षात्मक कार्य नहीं किया। मन्दिर हर एक के लिए समान है। ईश्वर एक है वह सब के लिए है। मन्दिर का दर-वाज़ा सबके लिए बराबर खुला होना चाहिये। इसके लिये उन्होंने मन्दिरों में हरिजन प्रवेश कराने का कोई कार्य-क्रम नहीं चलाया। हाँ, इतना ज़रूर है कि उन्होंने उन मन्दिरों में जाना छोड़ दिया जहाँ पर हरिजन का निषेध था।

उन्होंने इस अन्याय के विरोध में कोई जनमत बनाकर आन्दोलन नहीं किया।

ऐसा लगता है कि बुद्ध ने गान्धी की अपेक्षा लोगों के अन्दर मन-परिवर्तन का भाव अधिक भरा था—यह बात बौद्ध साहित्य से सिद्ध होती है। सम्भवत: सच्चे रूप में समान मानवता का पाठ पढ़ाने वाले बुद्ध ही आगे रहे। एक बार बुद्ध के महान् अनुयायी आनन्द, धर्म-प्रचार में निकले थे। रास्ते में उनको बहुत तेज प्यास लगी। तत्काल ही वे एक कुएँ के पास गये जहाँ एक कन्या कुएँ से पानी निकाल कर अपना घड़ा भर रही थी। आनन्द ने अपने भिक्षा पात्र को बढ़ाया और पानी माँगा। लड़की तुरन्त बोली 'महाराज (भिक्षु) मैं आप को पानी कैसे दे सकती हूँ, मैं तो एक अछूत कन्या हूँ' तब आनन्द बोले, 'कन्या मैं पानी माँग रहा हूँ, जाति नहीं पूछ रहा हूँ' फिर पानी लेकर प्यास को बुझाया। वह कन्या आनन्द के इस व्यवहार से इतनी प्रभावित हुई कि वह वहीं से कुएँ पर घड़ा रखकर उनके पीछे होली और उस स्थान पर गयी जहाँ तथागत महात्मा बुद्ध रह रहे थे। बुद्ध के बहुत समझाने के बाद भी वह गृहस्थ जीवन की ओर नहीं मुड़ी और वह भी मानवाकल्याण, समानता का पाठ समाज में फैलाने के लिये भिक्षुणी हो गई। क्या गान्धी के अनुयायियों ने ऐसा किया? गान्धी की मौत के बाद उनके महान् अनुयायी कहलाने वाले लोग केवल गान्धी दर्शन कहने लगे और उसको धीरे-धीरे भुलाते गये।

लोहिया ने करीब २½ हज़ार वर्ष बाद बुद्ध के इस समान-मानवतावादी सिद्धान्त को लेकर, उसमें गान्धी के विचारों को सम्मिलित करते हुए, सत्य और अहिंसा के रास्तों को अपना कर, अन्याय के विरोध में सिविल नाफरमानी को भारतीय समाज में लौहस्तम्भ की तरह गाड़ने की कोशिश की। पर उन्होंने साथ-साथ मानव को, अपने अधिकारों के लिये लड़ने के लिये भी सजग किया। लोहिया ने गाँधी के अनुयायी होते हुए भी गाँधी की तरह मन्दिरों में जाना नहीं छोड़ा जहाँ हरिजनों को प्रवेश की इजाजत नहीं थी, बल्कि उन्होंने हरिजनों को उत्साहित कर गान्धी के सत्य और अहिंसा पर चलकर आन्दोलन करना सिखाया और मन्दिरों में प्रवेश कराया। उन्होंने काशी के विश्वनाथ मन्दिर में हरिजन प्रवेश कराया। इसी तरह देश के कई भागों में मन्दिरों में हरिजन प्रवेश कराने के लिये आन्दोलन चलाया। हरिजन बस्तियों में सहभोज कराने का कार्य-क्रम चलाया। इस तरह से गान्धी जी के सपने को अगर सही माने में भारतीय समाज में किसी ने ढालने की कोशिश की तो वे केवल लोहिया ही थे। मुझे प्रसन्नता है कि कम से कम लोहिया ने अपने अनुयायियों का हृदय इतना परिवर्तित तो कर ही दिया है कि वे हरिजन बस्ती में खाना-खाने,

उनके साथ बैठने, उठने में हिचकिचाहट नहीं करते। वे लोहिया की मौत के बाद भी उनके इस विचार को फैलाने का कार्यक्रम चला रहे हैं। उनकी मौत के समय शहरों, कस्बों आदि में सहभोज का कार्यक्रम चलाया गया जहाँ कि हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, हरिजन आदि ने एक साथ बैठ कर खाया। हरिजन औरतों ने खाना पकाया। बनारस में काशी विद्यापीठ में यह कार्यक्रम वृहद् रूप में चलाया गया था।

अगर भारत में गाँधी के बाद सचमुच कोई उनका सही उत्तराधिकारी थे तो वह लोहिया ही थे। जिन्होंने गाँधी के मूल विचारों को मूर्तरूप में निखारा था। उन्होंने गाँधी के अनुयायियों को तीन भागों में बाँटा था। सरकारी गाँधी, मठाधीश गाँधी और कुजात गाँधी। सरकारी गाँधी वे जो गाँधी वा कांग्रेस की लड़ाई की कमाई पर आज तक सत्तारूढ़ हैं, पं० नेहरु आदि, मठाधीश गाँधीवादी विनोबा जी से लेकर खादी गान्धी निधि और अनेक प्रतिष्ठानों से सम्बन्धित लोग, कुजात गाँधीवादी लोहिया खुद और अपने जैसे करोड़ों लोगों को मानते हैं। आज जो सचमुच गाँधी जी के सत्य, अहिंसा और अन्याय के विरोध में सत्याग्रह के रास्ते पर चल रहे हैं, उन्हें कुजात कह कर बाहर कर दिया गया है। लेकिन इतिहास सिद्ध करेगा कि लोहिया ने ही गान्धी के बाद उनके विचार-दर्शन को भारतीय राजनीति और समाज में ढालने का कुशल शिल्पी का कार्य किया है।

गान्धी जी ने एक बार कहा था 'मैं एक ऐसे भारत को बनाऊँगा जिसमें गरीब से गरीब भी यह अनुभव करेंगे कि यह उनका देश है, जिसके निर्माण में उनकी आवाज़ का महत्त्व है, जिसमें ऊँच-नीच नहीं होगा, जिसमें सभी समुदाय पूरी तरह मिलजुल कर रहेंगे। ऐसे भारत में अस्पृश्यता और नशाख़ोरी जैसी बुराइयों के लिये कोई स्थान नहीं होगा। स्त्रियों को भी वही अधिकार होंगे जो पुरुषों को। हम सारे संसार के साथ शान्ति और मेल रखेंगे न तो हम किसी का शोषण करेंगे और न अपना शोषण होने देंगे, अतः हमें जितनी कम से कम सेना की कल्पना की जा सकती है उतनी ही रखनी चाहिये। सभी के हितों की, चाहे वे भारतीयों के हों या विदेशियों के, पूरी रक्षा की जायेगी, बशर्ते वे लाखों-करोड़ों निरीह जनता के हितों के विरुद्ध न हों। मैं स्वयं देशी-विदेशी का भेद नहीं करता। मेरे सपनों का भारत यह है······ इससे कम में मैं सन्तुष्ट नहीं हो सकता।'[1]

---

१. महात्मा गान्धी का सन्देश पृ० ८३-४।

'मेरे सपनों का स्वराज्य ग़रीबों का स्वराज्य है। आपको भी जीवन की वे सभी आवश्यक चीज़ें उपलब्ध होनी चाहियें, जो राजा-रईसों को उपलब्ध होती हैं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि आपके पास भी उनके जैसे महल होने चाहियें। वे सुखी जीवन के लिये जरूरी नहीं हैं। आप या मैं उनमें खो जायेंगे। लेकिन आपको जीवन की वे सब साधारण सुख-सुविधाएँ अवश्य मिलनी चाहियें, जो किसी अमीर आदमी को मिलती हैं। मुझे इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि जब तक स्वराज्य में आपको इन सुख-सुविधाओं के मिलने की गारण्टी नहीं मिल जाती तब तक वह स्वराज्य अधूरा रहेगा।' 'भारत ने पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है, ऐसा कब कहा जा सकेगा?······जब आम जनता यह अनुभव करने लगेगी कि उसे अपनी उन्नति करने की और अपने रास्ते पर चलने की आज़ादी है।'[1]

गान्धी जी देश के करोड़ों लोगों की ग़रीबी और दुर्दशा को देखकर व्यग्र हो उठते थे। वे उनके सुधार में अपनी सारी शक्ति लगाना चाहते थे। उन का विचार था, देश की करोड़ों जनता की वे सभी आवश्यकताएं पूरी होनी चाहियें जो कि जीवन के लिये आवश्यक हैं। स्वतन्त्र भारत में उत्तम जीवन बिताने के अवसर और स्वतन्त्रता के वरदान सबको समान रूप में मिलने चाहियें। बिना इसके स्वतन्त्रता का महत्त्व अधूरा ही रहेगा।

सम्भवतः गान्धी जी के इस स्वतन्त्र विचार को कांग्रेसी लोग बुरा मानते थे और उसका तिरस्कार भी किया जाने लगा था। एक बार गान्धी जी ने इसलिये दुःखी भाव में कहा था—'कहा जाता है कि मेरे भाषण आजकल निराशापूर्ण हैं। कुछ लोग तो यह सुझाव तक देते हैं कि मैं बिलकुल बोलूँ ही नहीं, मैं आशा करता हूँ कि मैं कहने मात्र के लिये कुछ नहीं कहता। मैं इसलिए कहता हूँ कि मुझे अनुभव होता है कि जनता से मुझे कुछ कहना है। क्या मैं सदा के लिए यह आशा छोड़ दूँ कि जनता मेरी बात सुनेगी। मैं ऐसा तब तक नहीं कर सकता जब तक मुझ में श्वास हैं।'[2]

"मुझे कुछ भी आश्चर्य न होगा यदि वे नेता जो मेरी प्रशंसा के पुल बाँध रहे हैं किसी दिन कहें 'इस बूढ़े की बकवास बहुत दिन सुन चुके, अब यह हम लोगों को अकेला क्यों नहीं छोड़ देता'[3]

---

१. वहीं पृ० ८४।
२. प्यारेलाल महात्मा गान्धी-दि लास्ट पेज जिल्द २ पृ० ६८६।
३. आज साप्ताहिक विशेषांक २ नवम्बर १९६९।

निश्चय ही गान्धी जी की यह शंका कांग्रेस के उन नेताओं की ओर थी जो कि भारत की गद्दी पर बरकरार थे। इसलिये गाँधी ने अपना विचार दिया था कि कांग्रेस को समाप्त कर इसे लोक-कल्याण में लगा दिया जाये। किसी ने नहीं सुनी। गद्दी की लोलुपता भला सोचने को भी कैसे बाध्य करती ? चाहे अब महात्मा जो भी कुछ बोले। पर आज़ादी मिलने के बाद गान्धी तत्काल ही चल बसे। गान्धी के सहयोगी लोहिया इससे काफ़ी दुःखी हुए।

यों तो लोहिया को गाँधी की हत्या की पहले ही शंका हुई थी। क्योंकि कई ऐसे कार्य हो चुके थे, जिससे गाँधी जी के जीवन को खतरा था। इसीलिए उन्होंने गाँधी जी के जीवन की सुरक्षा की सरकार से मांग की थी। पर सरकार ने कोई ध्यान नहीं दिया। अन्त में गाँधी जी मारे गए। इस पर लोहिया ने तत्काल ही सरकार से इस्तीफे की मांग की थी। क्योंकि वह गाँधी जी के जीवन को बचाने में असफल रही। पर सरकार इस्तीफा दे ही कैसे सकती थी। लोहिया ने गाँधी के विचारों को साकार बनाने में अपना जीवन लगाने की शपथ ली।

आज़ादी मिलने के बाद गाँधी के विचारों का क्रमिक ह्रास होने लगा था। कांग्रेसी राज्य में ग़रीब और ग़रीब होते जा रहे थे और अमीर-अमीर। उनके बीच की खाई आकाश चूमने लगी थी। ग़रीब जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं अर्थात् रोजी, रोटी और मकान से दूर होने लगे। आज़ादी के इतने दिनों के बाद भी इन्सान गोबर से दाना निकालकर पेट भरे; यह लोहिया के लिए असह्य था। अगर गाँधी जी भी आज़ादी के इतने दिनों के बाद जीवित होते तो उनका भी दिल यह देखकर काँप जाता। ये सब कारण ऐसे थे जिन्होंने लोहिया के हृदय को दुःखी बना दिया। इसलिए उनके मन में इस सरकार के प्रति घृणा और अविश्वास का वातावरण छा गया। साथ में गुस्से का भी। परिणामस्वरूप उन्होंने तत्काल ही 'गाँधी के सपनों का भारत' बनाने के लिए इस सरकार को उखाड़ फेंकने का संकल्प किया। गाँधी के सत्य और अहिंसा के मार्ग पर आन्दोलनों का सहारा लिया। दलित वर्ग को जागरूक बनाया। उनको अपने अधिकारों के प्रति सजग किया। इस प्रकार एक लम्बे आंदोलन का क्षेत्र तैयार कर डाला। गाँधी के बाद फिर से एक बार अन्याय के विरुद्ध, भारतीय समाज में गान्धीवाद की नीव डाली। और गाँधी के सन्देश 'न शोषण करेंगे और न शोषण होने देंगे' को चरितार्थ किया। इसीलिए गाँधी के बाद उन्हें दलित वर्ग का महान् नेता कहा जाता है।

डा० लोहिया समानता और समाजवाद की वकालत करते रहे। उनका

विचार था भारत में केवल अमीर और ग़रीब के बीच लड़ाई नहीं है बल्कि ऊँची जाति और छोटी जाति के मध्य भी लड़ाई है। वे भारत में वर्ग-हीन समाज की कल्पना करते थे। पर इसके लिए वे वर्ग-संघर्ष के साथ-साथ वर्ण-संघर्ष भी करना आवश्यक मानते थे। जाति के विरोध में संघर्ष करना उनके लिए आवश्यक था। इसीलिए वे 'जाति तोड़ो' सम्मेलनों के सूत्रधार हैं। उन्होंने पिछड़े लोगों को विशेष अवसर दिए जाने की मांग की।

वे अंग्रेजी के सख्त विरोधी थे। उनके विचार में एक आज़ाद मुल्क में विदेशी भाषा में काम-काज होना अपमान की बात है। वे इसे किसी भी क़ीमत पर तत्काल हटाने की मांग करते रहे—देश में जनता से और लोकसभा में सरकार से भी। लोहिया की दृष्टि में अंग्रेज़ी एक खास वर्ग का निर्माण करती है। वह देश में भारतीय जनता के शोषण का मूल कारण है। देश की बहुसंख्यक जनता इस नौकरशाही भाषा से अनभिज्ञ रहती है और इस अंग्रेज़ी भाषा के ज़रिए एक खास वर्ग मौज उड़ाता है। वह अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए ही अंग्रेज़ी का बहुत बड़ा हिमायती है। इसीलिए लोहिया ने इस सामन्ती भाषा अंग्रेजी को समाप्त करने के लिए पूरे देश के पैमाने पर अंग्रेज़ी हटाने का कार्यक्रम चलाया। सन् १९६० में उनके अनुयायी देश में अंग्रेज़ी में लिखे पोस्टरों को, अंग्रेजी में लिखे स्टेशनों के नामों को, इश्तहारों आदि पर अलकतरा पोतते हुए गिरफ्तार हुए। क्योंकि वे सामाजिक जीवन से भी अंग्रेज़ी का खात्मा चाहते थे। उस समय सरकार ने लोहिया के इस कार्य-क्रम की खूब खिल्ली उड़ाई। पर इसी कार्य-क्रम को लेकर छात्रों ने इस आन्दोलन को आगे चलाया। और देश में देशी भाषा चलाने की मांग को लेकर आन्दोलन किया। इस आन्दोलन में छात्रों को सफलता भी मिली है। छात्रों का नारा था 'गान्धी लोहिया की अभिलाषा, चले देश में देशी भाषा।'

लोहिया भारतीय समाजवादी व्यवस्था के महान् प्रवर्तक रहे हैं। उन्होंने विश्व की प्रमुख राजनीतिक विचार-धाराओं के बीच सांमजस्य स्थापित करने की व्यवस्था की। खासकर मार्क्स और गान्धी की विचार-धारा को मिलाकर एक ऐसे समाजवादी सिद्धान्त की नींव डाली जो भारत की सभ्यता, संस्कृति, आदि के अनुकूल हो। वे मार्क्सवाद और गांधीवाद आदि को अधूरा पाते हैं। इसीलिए वे न केवल भारत की ही बल्कि विश्व की सारी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक समस्याओं को गाँधी के सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह तथा सिविल नाफ़र-मानी की कसौटी पर कसते हुए अपने सिद्धान्त का महल खड़ा किया था। उन्होंने भी गान्धीवाद की तरह उन स्थानों पर जाना नहीं छोड़ दिया जो सब

के लिए समान नहीं था, बल्कि वे मानव अधिकार को जगाते हुए सत्याग्रह के रास्ते पर चल कर वहाँ पहुँचना ज़रूरी मानते थे।

लोहिया रूढ़िभञ्जक, नकारवादी और एक ग़ैर क्रांतिकारी समाज के क्रांतिकारी थे। हमारे देश के इतिहास के बारे में उनकी व्याख्या अन्य विद्वानों की व्याख्या से भिन्न थी। उनका यह निश्चित ही विचार था कि हमारा देश, देश के आन्तरिक शासकों के बीच मतभेद और फूट के कारण नहीं टूटा या विदेशी आक्रमणों का शिकार बना। बल्कि उसका मुख्य कारण था इस देश की आम जनता का उदासीन होना। जनता के इसी उदासीनता के रवैये से वे काफ़ी दुःखी रहते थे। क्योंकि जनता के इस रुख़ से उन्हें बराबर ख़तरा जान पड़ता था। कांग्रेस का आंदोलन भी जो इधर का भारत का बड़ा आंदोलन था आम जनता के बीच पूर्णरूप से सम्पर्क नहीं बना पाया था। वह केवल समाज के विशिष्ट वर्ग को ही आकर्षित कर सका था। उनकी यह मान्यता थी कि जब तक राजनीति में जनता की सक्रियता न लायी जाए तब तक देश का भविष्य बन ही नहीं सकता। वे किसान, मज़दूर, विद्यार्थी आदि सभी को राजनीति में सक्रिय देखना चाहते थे। इसीलिए इस स्थायी उदासीनता को समाप्त करने के लिए वे आन्दोलनात्मक राजनीति चाहते थे। वे राजनीति की जड़ को गहरी और मज़बूत बनाने के लिए ही ऐसा चाहते थे। केवल इसी के द्वारा राजनीति में एक नया प्राण और जोश आ सकता है। वह भी आंदोलन निष्क्रिय नहीं बल्कि सक्रिय। वे अन्याय के विरोध में भारतीय जनता को परम्परागत उदासीनता के शिकार होने से बचाने के लिए ही आंदोलनात्मक राजनीति में विश्वास करते थे, जिसकी नींव सत्य और अहिंसा पर डाली गई हो। इसके बाद वे रचनात्मक कार्य को एक के बाद एक करना चाहते थे। लोहिया का अपना यह विचार था कि हमें इस बात की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए कि और लोग पहले मेरे सिद्धान्त से सहमत हो जायें, तब कोई कार्य करें। अपने प्रति विश्वास दृढ़ लगने पर कार्य करने की मनुष्य के अन्दर क्षमता स्वयं होनी चाहिए और कार्य तत्काल ही आरम्भ कर देना चाहिए। इसीलिए लोहिया को मौलिक विचारक भी कहा जाता है।

उनकी धारणा थी कि इतिहास का आधार सत्य और तथ्यों के आधार पर लिखा जाना चाहिये। वह अन्य लोगों की तरह तथ्यों को जनता से भी छिपाने के पक्ष में नहीं थे। मुझे याद है, बनारस में टाऊन हाल के मैदान में एक उनकी विशाल सभा हो रही थी। सभा चीनी आक्रमण के दौरान थी। वहाँ पर उन्होंने कहा था कि भारतीय इतिहास में तथ्यों को छिपाकर जनता

का मुख दूसरे भाव की ओर मोड़ दिया जाता रहा है, जो बेतुका होता है, जिस से देश के लिए खतरा उत्पन्न हो जाता है। राणा सांगा बहादुरी से हारे। बाबर से हारे। पर किस्से ये कहे जाते हैं कि पीठ तो नहीं दिखाई उनके मरने के समय पर शरीर के सामने के भाग पर ८० चोटे लगी थीं। जनता को इसी में खुश कर दिया जाता रहा। उनका प्रश्न था कि अगर बहादुरी के साथ लड़े तो हारे क्यों? क्या उन्होंने लड़ाई के पहले जनता को ठीक से जगाया था, या संगठित किया था? और जब वे हारे तो क्या फिर से उन्होंने शक्ति को प्रेरित करने के लिये लोगों को संगठित किया? हारने के बाद भी देश में जीत की लहर को आधार बनाया और फिर इसके सहारे हार का बदला लेकर आज़ादी हासिल की जा सकती थी। अन्यत्र कहते हैं राणा सांगा शेर की तरह लड़े और लड़ाई हारने और मरने के पहले उन्हें करीब सौ घाव लगे। ये सब बड़ी वीरता से लड़े लेकिन इनकी वीरता के बावजूद देश स्वतन्त्र नहीं रह सका। इस प्रकार इतिहास लेखन में ज़रूर कहीं ग़लती है।[१] पृथ्वीराज चौहान मोहम्मद ग़ोरी से हारे पर हम ढोल बजाकर 'चार बांस, चौबीस गज' का गीत गाते रहे। देश का क्या हो रहा है या क्या होगा इस पर कोई सोचने वाला नहीं रहा। जनता इसी में खुस थी। इधर चीनी हमारे देश पर आक्रमण करते जा रहे है। नेता, सरकार, रेडियो अखबार सभी यह कह रहे हैं कि हमारे जवान बहादुरी से लड़ रहे हैं। जब कि असलीयत यह थी कि हमारी सेना बुरी तरह पिट रही थी। साम्राज्यवादी चीन हमारी जमीन को हड़प रहा था। सरकार का यह कर्तव्य होता है कि ऐसे समय पर वह देश की वास्तविक स्थिति को किसानों, मजदूरों, विद्यार्थियों, युवजनों के सामने रखे। वह कौन अभागा होगा जो अपनी ज़मीन को दूसरे के हाथों में जाने देगा। इससे युवजन उठेगा, तन से उठेगा, मन से उठेगा किसान, मजदूर हिम्मत बढ़ायेगें, वे खेती और कलकारखानों में उत्पादन बढ़ाने दौड़ेंगे। देश को मज़बूत बनायेगें, दुश्मन से लोहा लेंगे। युवजन सीमाओं की ओर दौड़ेगा। इसलिए ही लोहिया बहुत सी ऐतिहासिक बातों को जनता से छिपाना नहीं चाहते थे। जो इसे छिपाता था उसकी आलोचना करने में भी नहीं हिचकिचाते थे। उनका यह भी विचार था कि जिस सरकार या शासन को अपने दुश्मन का पहले से पता न हो वह सरकार या शासन गद्दी के योग्य नहीं है। ऐसी सरकार को जनता द्वारा तत्काल हटा देना चाहिए।

---

१. लोहिया के विचार पृ० ३७५।

लोहिया का विचार था कि देश के सब नगरों के चौराहों, पार्कों या जहाँ कहीं भी विदेशी शासकों की मूर्तियाँ लगी हैं उसे तत्काल ही सरकार को हटाना चाहिए। बल्कि अच्छा होगा कि उसके लिये एक खास जगह निश्चित कर दिया जाए और वहाँ संग्रहीत कर दिया जाए। इसके बदले उन जगहों पर राष्ट्र के प्रतीक महान नेताओं, विचारकों, सेनानियों और क्रांतिकारियों आदि की मूर्तियाँ स्थापित की जाएँ। वे चाहते थे, बुद्ध, राणा, शिवाजी, गांधी, सुभाष, भगतसिंह, चन्द्रशेखर आज़ाद, रहीम, कबीर, गुरुनानक, आदि की मूर्तियाँ स्थापित की जाएँ ताकि भारत की आगे आने वाली पीढ़ी उससे प्रेरणा ले सके। कुछ कर सके और उन्हीं का इतिहास क़ायम करने की कोशिश करें। इसी उद्देश्य से उन्होंने विदेशी मूर्तियों को हटाने का आंदोलन चलाया। बनारस के बेनियाबाग में रानी विक्टोरिया की मूर्ति तोड़ डाली गई। राजनारायण, प्रो० कृष्णनाथ आदि को १८ माह की कैद की सजा हुई। बाद में उत्तरप्रदेश के मुख्य मन्त्री बाबू सम्पूर्णानन्द ने इस मूर्ति को वहाँ से हटवा दिया। डा० लोहिया ने इस पर बाबू सम्पूर्णानन्द को ढाई साल की सज़ा देने की माँग की थी। दिल्ली के इण्डियागेट से भी, जनवाणी दिवस के समय जार्जपंचम की मूर्ति भंग कर उस का नाक तोड़ दिया गया। इसी तरह देश के अनेक भागों में यह आन्दोलन फैला। यह आंदोलन गोपालगंज (पू० पाकिस्तान) से ब्रिटिश आतंकवादी स होलवेल की प्रतिमा को हटवाने के लिए शेख़ मुजीबुर्रहमान ने भी चलाया था।[1]

हालांकि सरकार ने इन आंदोलन-कारियों के साथ सख्ती का रुख़ अपनाया, उनकी निर्मम पिटाई की, फिर भी वे क्रांतिकारी झुके नहीं। अपने आंदोलन में सफल रहे। बाद में सरकार ने इन मूर्तियों को स्वयं वहाँ से हटवा दिया। लोहिया ने यह आदोलन विदेशियों के विरोध के कारण नहीं किया। बल्कि उनकी मान्यता थी कि अगर हम इन विदेशी शासकों की मूर्तियों को नहीं हटाते तो आगे आने वाली पीढ़ी हमें कोसेगी, कि आज़ादी के बाद भी लोगों ने साम्राज्यशाही लोगों की मूर्तियाँ भारत में रहने दीं। और वह भी आम चौराहों पर। लोहिया का विचार था यहीं से एक ग़लत इतिहास का निर्माण होता।

लोहिया की मान्यता थी कि भारतीय जनता गाँवों में रहती है। जो लोकतन्त्र का स्तम्भ है। इसलिए वे गाँवों के स्तर को उठाना चाहते थे।

---

१. विनोद गुप्ता — जय बांगला देश पृ० [illegible]

गाँव में कुशलता विकसित करना चाहते थे। ग्रामीण उद्योग-धन्धों को बढ़ाना चाहते थे। गाँव के गँवांरूपन, रूढ़िवादिता, अस्पृश्यता, छुआ-छूत आदि को एक भयंकर बीमारी मानते थे। इसे हटाना ही होगा। इसीलिए उनका विश्वास था कि लोकतन्त्र में जीवन का कोई भी अंग राजनीति से अछूता नहीं रहता। जीवन का हर कार्य राजनीति से बँधा हुआ है। इसीलिए सत्ता में जब तक सब लोगों का हिस्सा नहीं होता तब तक लोकतन्त्र की स्थापना एक असम्भव बात होगी। वे सत्ता के स्थानांतर के पक्षधर थे।

लोहिया का समाजवाद से तात्पर्य था समाज के सभी सदस्य समान हैं। कोई ऊँचा नहीं है, कोई नीचा नहीं है। वे गान्धी को इस बात को मानते थे कि जिस प्रकार मनुष्य—शरीर के विभिन्न अंग एक दूसरे के समान हैं उसी प्रकार समाज के सदस्य भी समान है। यही समाजवाद है जहाँ सभी एक समान हों, सब की उन्नति हो और जहाँ सभी सुखी और प्रसन्न रहें।

लोहिया की दाम-नीति भी जाति-नीति और भाषा-नीति की तरह क्रान्तिकारी थी। उन्होंने कहा था कि ग़रीबी दूर करने के लिए एक निश्चित दाम-नीति भी आवश्यक है। उनका विचार था कि अनाजों की कीमत उनकी एक फ़सल से दूसरी फ़सल तैयार हो जाने तक सवाई या ड्योढ़ी से अधिक नहीं, उतार-चढ़ाव होना चाहिये। कारखानों में बने मालों का मूल्य लागत खर्च के ड्योढ़े से ज्यादा न हो। दामा-बाँधां-नीति द्वारा साहूकारों, मिल-मालिकों तथा पूँजीपतियों के शोषण से मुक्त करना ही उनका एक-मात्र लक्ष्य था। मानव-मानव का शोषण न कर सके, इसीलिये वे कल कारखानों का राष्ट्रीय करण या समाजीकरण चाहते थे। भारी उद्योगों का अवश्य ही राष्ट्रीयकरण होना चाहिये। गाँव को आत्मनिर्भर बनाने के लिये उन्होने एक बार कहा था कि मैं वहाँ पर चर्खा और फावड़ा दूँगा। लोकतन्त्र की सफलता के लिये समाजवाद की उन्नति के लिये वह क्रान्तिकारी तरीके से उत्पादन बढ़ाना चाहते थे। पर हाँ वह ऐसा कार्य करने के लिये तैयार नहीं थे, कि व्यक्ति के शरीर के साथ शोषण हो। वे रिक्शा चलाने के कार्य को बहुत ही निम्न स्तर का कार्य मानते थे। जहाँ इन्सान आधा पशु का कार्य करता है इसीलिये लोहिया कभी ज़िन्दगी में रिक्शा पर नहीं चढ़े थे। भले ही उनको पैदल चलना मन्जूर था।

लोहिया ने नर नारी के बीच समानता की वकालत की। उन्होंने नारी को नर की तरह ही सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक कार्यों में बराबर हाथ बटाने का विचार दिया। उनकी मान्यता थी कि नारी पुरुष की अपेक्षा किसी

भी बात में कमज़ोर नहीं होती। बल्कि हिन्दुस्तानी दिमाग़ ने उन्हें कमज़ोर बना दिया है। इस कमज़ोरी को दूर करना होगा। नर-नारी का पलड़ा समाज के संगठन और समानता के लिये बराबर रखना होगा। नारी को अपने कार्य क्षेत्र में वही स्थान प्राप्त हो जो पुरुष को अपने कार्य क्षेत्र में है।

लोहिया हिन्दुस्तान में नारी, हरिजन, मुसलमान, आदिवासी आदि को पिछड़ी जाती में शामिल करते हैं। इसलिये जीवन भर इनके सुधार का कार्य करते रहे। उन्होंने सर्व प्रथम सरकार का ध्यान गाँवों की ओर खीचा। जहाँ नारी के लिये पाखाने की कोई समुचित व्यवस्था नहीं है। पुरुष वर्ग तो कहीं चला जाता है पर नारी को फसल के समय तो गनीमत होती है वर्ना बाकी दिनों में खाली परेशानी उठानी पड़ती है। वहाँ पर उन्होंने सरकार से सामूहिक पाखाना बनाने की माँग की। उन्होंने कहा था दुर्भाग्य है कि जिस देश में एक औरत प्रधान मन्त्री हो, वह नारी की तकलीफ़ों को नहीं समझती।

लोहिया के नारी-सम्बन्धि संसद में इस वक्तव्य पर बोलती हुई श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा ने उनसे कहा था, डाक्टर साहब आप तो कभी नारी के सम्पर्क में आये ही नहीं फिर आप नारी के विषय में इतना क्यों सोचते है?' लोहिया ने इसके जवाब में कहा "तारकेश्वरी जी आप ने हमें मौका ही कब दिया है?" सारे सदन के सदस्य खिलखिला उठे। लोहिया अपने समय के एक हाज़िर-जवाबी व्यक्ति थे। किसी को भी जवाब देने के मौके को नहीं छोडते थे।

इस बात से वे बहुत ही दुःखी थे कि भारत में बहुत से ऐसे लोग भी हैं जो आज़ादी मिलने के इतने दिनों बाद सभी आवश्यक आवश्यकताओं से पृथक् हैं। वे हैं आदिवासी। जो मध्य प्रदेश, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, आसाम, उत्तर प्रदेश आदि के जंगलों में रहते हैं और अभी तक जंगली जानवरों की तरह अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। लोहिया ने अपने लोगों को उनके बीच उन्हें जागरूक बनाने के लिए भेजा। उन्होंने उनके मन में एक बदलाव की नीव डाली। आधुनिक सभ्यता की ओर उन्मुख किया। उनके आवास, वस्त्र, भोजन, पानी, शिक्षा, दवा आदि के सुधार के लिये अथक प्रयास किया। आदि वासियों की समस्या के सुधार के लिये लोहिया की प्रेरणा से बिहार, बंगाल, आसाम और मध्य प्रदेश में बहुत ही कार्य हुआ। बंगाल में राजाराम सिंह और दिनेश दास गुप्ता बहुत ही सक्रिय रहे।

इसीलिये आदिवासियों ने भी लोहिया की मौत के बाद, उनके विचारों को जिन्दा रखने [illegible] में जनवाणी

दिवस मनाया। और अपनी माँगों के समर्थन में देश के कोने-कोने से आये आदिवासियों ने सत्य और अहिंसा के आधार पर आन्दोलन किया, जहाँ सरकार ने बुरी तरह से उनके ऊपर लाठी बरसाई, अश्रु गैस के गोले पटके, जिससे कई लोगों के शरीर के चमड़े झुलस गये, सिर फूटे, हाथ टूटे और एक व्यक्ति बिहारी लाल जी की तो मौत ही होगयी। इस में बहुत ऐसे आदिवासी थे जो प्रथम बार रेल पर चढ़े थे, और अपने जीवन में ऊँचे-ऊँचे मकान, तथा शहर की रौनक देखी थी। पर सरकार ने उनके सामने भी शक्ति बरती। फिर भी वे वहाँ से हटे नहीं। लोहिया के इस सिद्धान्त पर अडिग रहे कि 'मारेंगे नहीं पर मानेंगे नहीं।' और अपने अधिकारों के लिये बृहद् रूप में जन-प्रदर्शन किया।[1]

पर इस लाठी, अश्रुगैस के काण्ड से सरकार को प्रथम बार ज्ञात हुआ कि जन-प्रदर्शन में कितनी शक्ति होती है। इस काण्ड को लेकर आचार्य कृपलानी, श्री रविराय, श्री जनेश्वर मिश्र आदि संसद में सरकार के ऊपर उबल पड़े। इसके विरोध में प्रस्ताव आया। भारतीय राजनीति के इतिहास में प्रथम बार कांग्रेस की सरकार सिर्फ़ ३९ ही मतों से बच पायी थी। हालांकि कई व्यक्ति जानबूझ कर मत देने नहीं गये, नहीं तो निश्चय ही उस दिन काँग्रेस सरकार का पतन होता।

लोहिया का एक अपना सपना था, वह था विश्व सरकार की कल्पना। वे दुनिया से ही ग़रीबी मिटाना चाहते थे। सम्पूर्ण मानव समाज एक परिवार हो। अतः अमीर देश को गरीब देश की ग़रीबी दूर करने में अधिक मदद करनी चाहिये। इसीलिए वे एक विश्व की संसद की कल्पना करते थे। जहाँ पर विश्व के सभी देशों के प्रतिनिधि हों और विश्व की सारी समस्याओं पर विचार-विमर्श करें। इस प्रकार वह गाँव से विश्व के सारे देश को एक सूत्र में बाँधना चाहते थे। जहाँ पर मानव अधिकार और उसके मूल्य को समझा जा सके। इसी उद्देश्य से लोहिया ने अनेक देशों का भ्रमण किया और अपना विचार फैलाकर विश्व जनमत को जगाने की कोशिश की।

इसी सम्बन्ध में स्टाकहोम में विश्वशान्ति का एक सम्मेलन हुआ। लोहिया भी इस सम्मेलन में शामिल हुये थे। इस सम्मेलन में लोहिया ने सारे योरोप में सैनिक तैयारी पर आश्चर्य व्यक्त किया था। उनका ख्याल था कि

---

१. विस्तृत जानकारी के लिये देखिये दिनमान, साप्ताहिक १९ अप्रैल १९७०।

सैनिक तैयारी से निश्चय ही विश्व में तनाव बढ़ेगा। जो औज़ार बम्ब, गन, तोप, आदि बनाये ज़ायेंगे वह निश्चय ही एक न एक दिन छोड़े जायेगें। क्यों कि जब उनका निर्माण होगा तो वह छोड़े ही जायेंगे। दुनिया विनाश के कगार पर पहुँच जायेगी। लोहिया ने जर्मनी, यूगोस्लविया, अमेरिका, हनोई, जापान, हाँगकाँग, थाईदेश, सिंगापुर, मलाया, इण्डोनेशिया, लंका आदि देशों का भ्रमण किया। लोहिया के मौलिक विचारों से प्रभावित होकर ही विदेश के अनेक विश्वविद्यालय उनके व्याख्यान के लिये निमन्त्रित करते थे। चाहे वह फिस्क विश्वविद्यालय हो या एरिजोना विश्वविद्यालय। जर्मनी के बर्लिन विश्वविद्यालय से उन्हें अक्सर निमन्त्रण आता। जहाँ वे जाकर विभिन्न विषयों पर अपने विचार को रखते थे। भले ही आजाद भारत के विश्व-विद्यालयों ने ऐसा न किया हो।

वे विश्व के समस्त समाजवादी संगठनों और शक्तियों को एक जुट में लाना चाहते थे। इसीलिए वे रूस, जर्मनी, अफ़ग़ानिस्तान तथा अन्य एशिया के महत्वपूर्ण देशों में गये और वहाँ के समाजवादी नेताओं से विचार विमर्ष किया। अमेरिका में विश्व के महान् वैज्ञानिक आइन्स्टीन से मिलकर बहुत खुश हुये थे। क्योंकि आइन्स्टीन के विचारों में उन्हें मानवता की झलक मिली। इसीलिये वे अपनी पीढी के तीन महान् हस्ती मानते थे। गान्धी महान् राजनीतिज्ञ, विचारक, समाज सुधारक के रूप में, बर्नाड शा महान् साहित्यकार खास कर आधुनिक ड्रामा के सूत्र-धार के रूप में और आइनस्टीन को महान् वैज्ञानिक और मानवतावादी के रूप में।

लोहिया अफगानिस्तान खासकर इसलिये गये थे कि वहाँ काबुल में महान् स्वतन्त्रता संग्राम का सेनानी और मानवतावादी खॉन अब्दुलगफ्फ़ार खाँ रह रहे थे। पाकिस्तान के निर्माण के बाद पूरे १५ वर्ष तक पाकिस्तान सरकार ने उन्हें जेल में रखा था। जिसके कारण उनका स्वास्थ्य काफी गिर गया था। इस समय यहीं वे स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे। गफ्फ़ार खाँ के प्रति लोहिया का अपार प्रेम था। क्योंकि आज़ादी की लड़ाई में वे दोनों एक दूसरे को अच्छी तरह से जानते थे। भारतीय जनता उन्हें अधिकतर सीमान्त गाँधी के नाम से जानती है।

लोहिया सबसे पहले अफग़ानिस्तान में उनके निवासस्थान पर गये और चार रोज तक वहाँ रहे। लोहिया प्रथम मिलन के दृश्य को यों व्यक्त करते हैं—पूरे अठारह साल के बाद हमने एक दूसरे को देखा था और बड़ा ही दर्द-नाक दृश्य था। खाँन अब्दुल गफ्फार खाँ है तो पठान और लम्बे तगड़े पठान,

लेकिन नर्म-दिल भी बहुत हैं। हमारी भेंट हुयी तो उनकी आँखों से आँसू फूट निकले...ख़ाँ साहिब आज भी निराश नहीं हैं। उनमें दृढ़ निश्चय की भावना इस प्रकार छिपी है जैसे ज्वालामुखी में आग छिपी रहती है...खाँ साहिब को हमारी राष्ट्रीय लीडरशिप से शिकायत है कि उसने हिन्दुस्तान का बटवारा करने की बरतानवी साम्राजी स्कीम को स्वीकार करके केवल उनके तथा उनके आन्दोलन के साथ ही नहीं बल्किी पूरी हिन्दुस्तानी कौम के साथ गद्दारी की थी......मैं उनके आगे शर्मिन्दा था। मैं यह महसूस कर रहा कि उनकी आँखे मुझ से गिला कर रही हैं कि तुम्हारे लीडरों ने मेरे साथ और मेरी पठान कौम के साथ गद्दारी की है।...[1]

लोहिया ही पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने खाँ अब्दुल गफ्फार खाँ को भारत लाने को प्रेरित किया था। भारत वापस आने पर उन्होंने भारत सरकार से माँग भीं की थी कि खाँ साहब को भारत सरकार निमन्त्रित करे और उन्हें भारत बुलावे। पर सरकार ने उस समय ध्यान नहीं दिया। लोहिया की मौत के बाद गान्धी शताब्दी के समय देश में जब खाँ साहिब आये तो वे उस स्थान पर भी गये जहाँ लोहिया रहते थे और लोगों को लोहिया के सत्य, अहिंसा, मानवता, समता आदि के विचार पर चलने का सन्देश दिया।

लोहिया भारत विभाजन के सख्त विरोधी थे उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'भारत-विभाजन के अपराधी' में देश के नेताओं को ही भारत-विभाजन के मूल में माना है।

ब्रिटेन की नीति के अनुसार माउन्टबेटन इस देश का बटवारा कर के ही आज़ादी देना चाहते थे। और इसके लिये नेताओं को राजी भी कर लेना चाहते थे। हिन्द-पाक बटवारे की परिस्थितियों को यों व्यक्त करते हैं—'माउन्टबेटन प्रस्ताव के सम्बन्ध में प्रस्ताव के समय सुझाव आया था कि हमें दो राष्ट्र-सिद्धान्त को इन्कार कर देना चाहिये। पर मूल प्रस्ताव जो श्री नेहरु ने अपनी जेब से निकाला, उसमें उसका जिक्र न था। नतीजे के रूप में दो राष्ट्र-सिद्धान्त की उसमें स्वीकृति थी। इसके अर्थ थे कि हमने भारत का चित्र जो अपने मन में पहले खींचा था वह सदा के लिये सपना ही बना रहा जायेगा और दो-राष्ट्र-सिद्धान्त के इन्कार का जो मैंने सुझाव दिया था और ज़िसे गान्धी जी का समर्थन प्राप्त था, वह वाक्य ही इस मूल प्रस्ताव में न था यद्यपि पहले वह जोड़ा गया था। अतः जब मैंने अपना सुझाव दुहराया और उसे

---

१. ओ० श० लोहिया पृ० २८६-८७।

गान्धी जी ने समर्पित किया तब श्री नेहरु ने बड़े क्रोध में कहा कि हम लोग जिन्ना की बात को ग़लत समझ कर बेकार की बहस में उलझते हैं। लोगों का ऐसी स्थिति में भाई-भाई कहने से क्या मतलब जब लोग एक दूसरे का गला काट रहे हैं? तब मैंने ज़रा ताज्जुब से कहा कि अमरीका के गृह-युद्ध में तीन या चार लाख लोग मारे गये थे पर वे भाई-भाई तो बने रहे। हिन्दू और मुसलमान आज चाहे जानवरों की तरह एक दूसरे को मारें पर उनका भाई चारा खतम न होगा। गान्धी जी सब बातें सुन रहे थे। बीच-बीच में वे मुस्कराते और टोक-टॉक सी करते। मेरा कहने का मात्र तात्पर्य यह है कि गान्धी जी बटवारे के पूरी तरह विरुद्ध थे।"[१]

"वर्किंग कमेटी में दो सोशलिस्ट थे—जयप्रकाश नारायण और मैं। केवल चार आदमियों ने बटवारे के प्रस्ताव के खिलाफ अपनी राय ज़ाहिर की—हम दोनों सोशलिस्ट, श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन और गान्धी जी। उस प्रस्ताव पर मौलाना (आज़ाद) बिल्कुल चुप रहे। हो सकता है, उनके दिल पर बहुत सदमा रहा हो। मुझे दुःख है कि मेरे जैसा आदमी उस प्रस्ताव पर सक्रिय विरोध नहीं कर सका। मैंने अपनी जिन्दगी में जो कुछ किया है उसमें अफ़-सोस के मौके शायद ही आये हैं। शायद यही एक ऐसा काम मुझसे हो गया है कि जीवन भर इसके लिये अफ़सोस रहेगा। मेरे सक्रिय विरोध से होता ही क्या, लेकिन इतिहास में लिखने को तो हो जाता है कि जब देश के बटवारे का यह महान् गन्दा काम हो रहा था तो मेरे जैसा आदमी जेल में जाकर बैठा था। श्री नेहरू और पटेल बटवारे के प्रस्ताव को मानकर आये थे, तब गाँधी जी ने कहा था, तुम लोगों ने महान् गलती की। लेकिन काँग्रेस को तुम्हारी इज़्ज़त करनी है गाँधी जी ने सलाह दी कि अब यह प्रस्ताव पास हो जाना चाहिये कि बटवारे के उसूल को हम लोग मानते हैं लेकिन अंग्रेज़ हिन्दुस्तान छोड़कर चले जायें। मुस्लिम लीग के साथ बैठकर हमलोग बँटवारा कर लेंगे। या यह निर्णय हो जाय कि ६ महीने के लिये बागडोर जिन्ना साहब के हाथ में दे दी जाय—इस शर्त पर कि वे एक भी कानून ऐसा न बनायेंगे जिससे हिन्दुओं की हकतलफ़ी हो और इस बात का फ़ैसला बड़े लाट करेंगे। लेकिन श्री नेहरु और पटेल दोनों ने इनमें से एक भी प्रस्ताव को पास नहीं होने दिया। इस प्रकार देश के बटवारे की पूरी जिम्मेदारी किसी एक आदमी पर कहीं जा सकती है तो वे हैं श्री नेहरु।"[२]

---

१. लोहिया के विचार पृ० २२०-२१।
२. लोहिया के विचार पृ० २४४।

लोहिया के अनुसार देश का विभाजन दो ही कारणों से हुआ। पहला तो यह कि देश के नेता बुढ़ापे में गद्दी पर आसीन होना चाहते थे। इसलिये इन लोगों ने इसके लिये सौदेबाज़ी की और इस सौदेबाज़ी में आज़ादी की बड़ी से बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। दूसरा कारण था हिन्दू-मुस्लिम दंगे का डर। पर यह विचारधारा निरर्थक साबित हुई। यह बटवारे के बाद और बढ़ा। फलस्वरूप ६ लाख आदमी मारे गये और डेढ़ करोड़ लोग घर और ज़मीन से उखड़ गये। जो कि मानव इतिहास में एक अपूर्व घटना थी। लोहिया का कहना था कि अगर इस भयानक घटना की कल्पना श्री नेहरु को होती तो वे भी बँटवारे को हर्गिज़ नहीं मानते।[1]

देश के इन लोगों ने सोचा था कि बटवारे के बाद आपस में प्रेम बढ़ेगा, शांति रहेगी, हिंसा नहीं होगी। पर यह तो हुआ नहीं। प्रेम बढ़ने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता, उलटे द्वेष बढ़ा। और ये दो देशों के रूप में हिन्दुस्तान और पाकिस्तान बन गये। पर लोहिया ने इस बटवारे को नकली माना। बटवारे के दिन से जीवन के आखिरी वक्त तक एक कड़ी में जोड़ने का स्वप्न देखते रहे। क्योंकि उनके अनुसार उन्नति के लिये इसके सिवाय दूसरा कोइ चारा ही नहीं है। वे पाकिस्तान की बनावट को बिल्कुल ही नकली मानते रहे और उनके अनुसार पाकिस्तान इतिहास में अपना स्थान स्थायी नहीं बना सकता। एक दिन उसका अन्त हो जायेगा। और हिन्द-पाक का महासंघ बन जायेगा। इस विषय पर उनके बंगलादेश सम्बन्धि विचार, का अलग अध्ययन किया जायेगा। जिसमें लोहिया की राजनैतिक दूरदर्शिता, प्रौढ़ता के विचार का निखार हुआ है।

लोहिया रंग-भेद के कारण मानव अधिकारों को मानव से वंचित किये जाने को जंगलीपन मानते थे और वहीं पर उसका विरोध भी करना शुरु कर देते थे। चाहे वह देश हो या विदेश। इसी सम्बन्ध में एक घटना अमेरिका की है। बात सन् १९६४ की है। लोहिया एरिजोना विश्वविद्यालय में भाषण करने गये हुये थे। वहाँ एरिज़ोना से २६ मई को लोहिया जैक्सन पहुँचे। उन्हें नागरिक अधिकारों के कार्यों वाले केन्द्र (तेउगलों सदर्न कालेज) में जाना था। उनके साथ स्तेपन पोइट्री सेंटर की संस्थापिका श्रीमती रूथ स्तेपन भी थी। लोहिया वही अपनी भारतीय वेष-भूषा, धोती कुरता सदरी वा चप्पल पहने हुये थे। हवाई अड्डे पर उनका अपार स्वागत किया गया।

यहीं से लोहिया अपनी अमेरिकी मित्र मन्डली के साथ एक पास के होटल

---

१. लोहिया के विचार पृ० २४४।

में खाना खाने गये। पर वहाँ पर उन्हें बिना खाना खिलाये ही वापस कर दिया गया और इसका कारण बताया गया लोहिया का काली चमड़ी वाला होना। यहाँ लोहिया को बहुत ही आश्चर्य हुआ कि लिंकन के देश में, आधुनिकता के इस कगार पर रंग-भेद को कारण मानकर, मानव को मानव अधिकार से वंचित कर दिया जाता है। साथ में उनका हृदय घृणा से भर गया। लोहिया ने कहा "मैं साफ तौर से बतादूँ कि मैं अमरीकी जीवन की किसी बुराई का पर्दाफाश करना या उसे प्रचारित करना नहीं चाहता। ऐसी बुराइयाँ तो सभी जगह मौजूद हैं—हमारे देश भारत में भी। मैं ऐसी जगह खुद जाना पसन्द न करूँगा जहाँ मैं न जाना चाहूँ। यदि एक सार्वजनिक स्थान में जाकर मैं कोई कानून तोड़ने की कोशिश करता होऊँ तो में आशा करूँगा कि मेयर या दूसरे अधिकारी मुझे गरिफ्तार करें और मैं उनसे कोई शिकायत न मानूँगा। मैं एक अमेरिकी नागरिक जसा ही व्यवहार करना और पाना चाहता हूँ।"[1]

लोहिया ने साफ़ होटल के प्रबन्धक को संदेश दिया कि मैं कल होटल में आऊँगा और घुसने का प्रयत्न करूंगा।

दूसरे दिन डां० लोहिया अमेरिका महिला श्रीमती रूथ-स्तेपन के साथ होटल में आये। मैनेजर ने उन्हें कहा कि आप यहाँ से चले जाइये। लोहिया बोले 'मैं यहाँ से न जाऊँगा। मैं यह बात बड़ी विनम्रता से कह रहा हूँ कि मैं वापस रहीं जाऊँगा।'

इसी बीच पुलिस अधिकारी भी आ गया और उसने लोहिया से वापस चले जाने को कहा। तब लोहिया ने और दृढ़ता से कहा 'मैं कदापि नहीं जाऊँगा। मैं यहीं दरवाज़े पर खड़ा रहूँगा।' इसके बाद पुलिस अधिकारी ने कहा कि मुझे खेद है कि आपको गरिफ्तार करना पड़ेगा।'

फिर वह पुलिस अधिकारी लोहिया को गरिफ्तार कर बाहर खड़ी पुलिस गाड़ी में ले गया। तब लोहिया मुस्कराकर पुलिस अधिकारी के कन्धे पर हाथ रखकर बोले 'भाई तुम्हारा काम तो पूरा हो गया।'

इसी बीच इसकी सूचना भारतीय दूतावास तक पहुँच गयी। भारतीय दूतावास से भागे-भागे दो व्यक्ति आये। थोड़ी देर बाद लोहिया को छोड़ दिया गया।

अमेरिका के मुख्य अखबार 'डेली-न्यूज़' ने इस घटना की चर्चा करते हुए २८ मई को लिखा 'भारतीय विधान निर्माता को होटल में घुसने से रोका गया, जब वे दो तिहाई शरीर को ढकने वाले अजीब से कपड़े व सैंडल पहन कर

---

१. आंकारशद लोहिया ८०।

होटल में जाना चाहते थे।'

दूसरे ही दिन वाशिंगटन में अमरीकी गृह-विभाग ने लोहिया के साथ हुये जैक्सन की घटना के लिये, भारतीय दूतावास को, क्षमा माँगते हुये खेद पत्र दिया था। एक सरकारी प्रतिनिधि भी लोहिया से मौखिक क्षमायाचना के लिये मिला। इस पर लोहिया ने कहा—'मुझ से माफ़ी माँगने से क्या मतलब माफ़ी तो अमरीकी राष्ट्रपति को दुनिया के तमाम अश्वेतों से मांगनी चाहिए जिनके प्रति गोरी चपड़ी वाले अन्याय कर रहे हैं।" इस तरह से रंग-भेद के अन्याय के विरोध में लड़ने वाले लोहिया ने विद्रोह किया। वे ऐसे तमाम कानूनों को तोड़ने के पक्ष में थे जिसमें मानव को मानव से भिन्न कर दिया जाता है। मैं श्रीमती इन्दुमती केलकर जी के इस मत से सहमत हूँ कि 'डा० लोहिया की हर गरिफ्तारी में कुछ रहस्य छिपा हुआ है उसका विस्तृत अध्ययन होना चाहिये।'

ठीक इसी दिन भारत में प्रधान मन्त्री पं० जवाहर लाल नेहरू का देहान्त हो गया था। लोहिया का शोक सन्देश थोड़ी देर बाद आया। जिसका मूलकारण था अमरीकी होटल की घटना। पं० नेहरू की मृत्यु से लोहिया दुःखी हुए। आजादी की लड़ाई में दोनों नेताओंने एक साथ मिलकर अथक कार्य किया था। १९४७ से पहले ये लोग ही भविष्य के शिल्पी थे। लोहिया ने बहुत ही दुःख के साथ निम्न शोक-संदेश भेजा—'भारत के प्रधानमन्त्री और काँग्रेस दल के सबसे विशिष्ट नेता के निधन पर मुझे दुख है। एक ऐसे व्यक्ति के निधन पर जिसने उस समय हम लोगों का मर्म-स्पर्शी मोहकता के साथ नेतृत्व किया, मुझे शोक है। उनमें कम से कम एक क्रांतिकारी का व्यवहार था। मुझे उनकी सुपत्री के प्रति समवेदना है। जो शोकमग्न होंगी। मैं उसे यह कहना चाहता हूँ कि उसके शोक में मैं भी शामिल हूँ। क्योंकि स्मृतियाँ चाहे जितनी भी धुँधली हो जाएँ वे अपनी छाप अवश्य छोड़ जाती हैं जो लोग आज शोकविह्वल हैं, उनसे मैं कहना चाहता हूँ कि वे उन बंधनों को तोड़ डालें जिन्होंने क्रांति को बंदी बना रखा है। प्रधानमन्त्री के निधन पर कुछ बोलने में मुझे इस कारण विलम्ब हुआ कि जब यह समाचार पहली बार मिला तो मैं अन्याय के एक क्षेत्र में उलझ गया था और १९४६ तक के इस योद्धा की पुण्य-स्मृति में मैंने उस उलझन को स्वीकार करने का निश्चय किया।'

देश के प्रमुख अखबारों ने इस मर्मस्पर्शी शोक सन्देश पर जनता के सामने तोड़ मरोड़ कर टिप्पणी करने की कोशिश की। लोहिया की आलोचना की और लिखा कि श्री नेहरू के मरने के बाद भी लोहिया उनकी आलोचना

करने से ब ज़ नहीं आये। १९४६ तक ही उन्हें वे योद्धा मानते हैं। १९४६ के पहले वाले नेहरू को त्यागी, क्राँतिकारी सच्चा साथी और महान् नेता मानते हैं। उनकी सूझ-बूझ की काफ़ी प्रशंसा करते हैं।

पर लोहिया ने इसे सच्चे और उदार हृदय से भेजा था। अब न नेहरू रहे और न लोहिया। अब इन दोनों महान् नेताओं की विचारधारा को एक सच्चे इतिहास-कार को सही ढंग से जनता के सामने लाने का कार्य करना चाहिये। हमारे ख्याल से भारतीय राजनीति में लोहिया नेहरू की अपेक्षा अधिक दूरदर्शी रहे, सिद्धान्त में नेहरू से ज़्यादा मौलिक विचार दिए। देश के भविष्य में घटने वाली घटनाओं को लोहिया ने ही पहले व्यक्त किया। अपनी राजनीतिक दूर-दर्शिता से सही भविष्य-वाणियाँ कीं और कार्य-क्रम में, समाज में जनता के काफ़ी करीब रहे। दलितों, बेसहारों को सहारा दिया। उनको अपने अधिकार के लिये सजग किया।

लोहिया का नेहरू से व्यक्तिगत कोई मतभेद और द्वेष न था। वे तो बराबर कहा करते थे कि मेरी नेहरू से कोई व्यक्तिगत लड़ाई नहीं है एक ही थाली में खाने वाले आपस में व्यक्तिगत बातों को लेकर कैसे लड़ सकते हैं? हाँ सैद्धान्तिक तौर पर लोहिया नेहरू के आलोचक ज़रूर रहे। वे उन्हें १९४६ के बाद महान् नहीं मानते। उनका विचार है कि नेहरू-नीति के कारण ही हिन्द-पाक बना। भारत विभाजन के उन्हें ही वे अपराधी मानते हैं। और उसी दिन से नेहरू के प्रति उनकी धारणा बदल गई। आज़ादी के बाद भी लोहिया नेहरू को सफल राजनितिज्ञ नहीं मानते थे। क्योंकि उनकी अदूरदर्शिता के कारण ही देश की विदेशी नीति असफल रही, देश की सीमाओं में सिकुड़न आयी। तिब्बत की एक शिशू के रूप में हत्या हो गयी। सदियों से आ रहा भारतीय सभ्वता और संस्कृति का स्थल कैलास मानसरोवर गया। देश में क्रान्ति-कारी तरीके से उत्थान नहीं हुआ। ग़रीबी मिटाने का कार्य नहीं किया गया। जबकि हम सब लोगों, १९४६ के पहले वाले नेहरू ने ऐसा सपना देखा था।

कौटिल्य ने अपनी राजनीति की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक 'अर्थशास्त्र' में कहा है कि-किसी भी राजा या राज्य का सबसे प्रमुख कर्त्तव्य होता है अपनी सीमाओं की रक्षा करना और देश में जनता के जीवन स्तर को ऊपर उठाना। ग़रीबी को दूर करना राजा या राज्य का प्रमुख कार्य होता है। अगर राजा या राज्य ऐसा नहीं करता है तो ऐसा राजा को राज्य की जनता को तत्काल ही हटा देना चाहिये। यह बात हमें महाभारत के शान्तिपर्व और वैदिक साहित्य से

भी सिद्ध होती है।

इसीलिये डॉ० लोहिया जब भारतीय संसद् में १९६३ में फ़रूखाबाद से चुनकर आये तो प्रथमबार नेहरू के प्रधानमन्त्रित्व-काल में कांग्रेस मन्त्रिमण्डल के प्रति अविश्वास प्रस्ताव आया था। उस अविश्वास-प्रस्ताव पर बोलते हुये लोहिया ने कहा था कि यह सरकार देश की सीमाओं की रक्षा करने और देश की ग़रीबी दूर करने में असफल रही है अतः यह इस्तीफ़े वाला प्रस्ताव नहीं है बल्कि निकाल बाहर करने वाला प्रस्ताव है।

लोहिया विचारों के धनी थे। उनके अन्दर उच्च कोटि की अपनी मौलिक प्रतिभा थी। वे अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र आदि के प्रकाण्ड विद्वान् थे। वे बहुत ही अधिक अध्ययनशील थे। कभी-कभी तो वे दो-दो बजे रात तक अध्ययन करते थे। रात को तो बिना कुछ पढ़े लिखे वे सोते ही नहीं थे। सर्वैव उनके तकिया के पास किताबों का वण्डल का वण्डल किसी वक्त पाया जा सकता था। इसीलिये जब भी संसद में उनका प्रश्न होता था तब काँग्रेसी मन्त्रीमण्डल के मन्त्रीगण बहुत ही सँभल कर जवाब देते थे। क्योंकि सदैव यह डर बना रहता था कि वे सरकार को किसी भी वक्त खतरे में डाल सकने में सामर्थ थे।

लोहिया ने जितना अपने विचारों को अपनी वाणी और लेखनी से व्यक्त किया है उतना भारत में ही नहीं बल्कि विश्व के किसी भी राजनेता या राजनीतिज्ञ में पाया जाना दुर्लभ हैं। वे भाषण कला में प्रवीण थे। सभा में अपनी वाणी से किसी को मोह लेते थे तो किसी को नाराज़ भी कर देते थे। क्योंकि वे किसी की ग़लती को जनता से नहीं छिपाते थे। ग़लतियों का विरोध करना वे अपना प्रमुख कर्त्तव्य मानते थे।

उनकी लेखन शैली उच्चकोटि की थी। वे अपने भावों को सरल से सरल और क्लिष्ट से क्लिष्ट भाषा में रखने में सामर्थ थे। हिन्दी भाषा में उन्हों ने लेखन-शैली को इतनी सरल और भावयुक्त बनाया है कि कोई भी, किसान मजदूर, टाँगा वाला, विद्यार्थी आदि आसानी से समझ लेता है। वे हिन्दी साहित्य के शब्दों के निर्माण के इतिहास में शब्दों को माँज कर चलन के योग्य—शब्दों के निर्माता हैं। इसीलिये हिन्दी साहित्य के विद्वानों की दृष्टि में वे आदर के साथ देखे गये हैं। शब्द को रखने और बोलने की उनकी अपनी निजी एक शैली है, जो भाषा को मधुर और सुस्पष्ट बना देती है। वे हिन्दी में जितना ही सरल और सुस्पष्ट भावों को रखते थे अंग्रेज़ी में उतने ही क्लिष्ट और गम्भीर। वे कई भाषाओं के अच्छे वक्ता थे। हिन्दी, अंग्रेजी,

जर्मन, बंगला, उर्दू आदि पर उनका अधिकार था।

मार्क्सवाद का जितना गम्भीर अध्ययन उन्होंने किया था उतना श्री मानवेन्द्रनाथ राय, श्री जयप्रकाश नारायण और एक दो अन्य व्यक्तियों को छोड़ कदाचित् अधिकतर कम्यूनिष्ट नेताओं ने भी नहीं किया होगा। वे अपनें में मार्क्स को अधूरा पाते हैं। वे मार्क्स गाँधी को अपना कर एक नये समाजवादी सिद्धान्त का सूत्रपात करते हैं। वे कहते हैं 'समाजवाद का अगर सिर्फ एक अंग ले लिया जाता है जैसे वामपंथी राष्ट्रीयता या जैसे वामपंथी आर्थिकता तो समाजवाद खंडित रह जाता है, अधूरा रह जाता है। समाजवाद के अंग या मतलब कई हैं। मोटी तरह से मैं कुछ गिनाये देता हूँ। एक वामपंथी राष्ट्रीयता दूसरे उग्रपंथी आर्थिकता, तीसरे उग्रपंथी धार्मिकता, चौथे उग्रपंथी सामाजिकता पाँचवें उग्रपंथी राजनैतिकता। ये मतलब बिलकुल साफ़ मेरे दिमाग़ में आ रहे हैं।'[१]

वे गाँधी जी के वे विश्वासपात्र थे। महात्मा जी के प्रति अत्यधिक सम्मान के पथ पर वे आजीवन अडिग रहे। इनके जीवन तथा चरित्र में समाजवाद, गांधीवाद का यह व्यामिश्रण उन्हें शोषित, पीड़ित तथा ग़रीबों का सक्रिय सहायक एवं सेनानी बना ले गया। यह उनका गांधीवाद का फलस्वरूप था, जिसमें अपनी मौलिक सूझ-बूझ थी।

इसीलिये लोहिया को दूरदर्शी, एक लम्बे क्रान्तिकारी, लोकतन्त्र के प्रेरणा-स्रोत, मौलिक चिन्तक और समाजवादी आन्दोलन के जनक कहा जाता है। क्योंकि कांग्रेस के भीतर समाजवादी शिविर का आरम्भ करने वालो में लोहिया ही प्रमुख थे और बीच में कई लोग आये तथा गये पर डॉ० लोहिया समाजवाद की प्रखरता के पथ-प्रवर्तक आजीवन बने रहे। उन्होंने कहा भी है "मैं समाजवादी हूँ और ज़िन्दगी में अब समाजवाद तो नहीं छोड़ने वाला, लेकिन इतना मैं कह दूँ कि समाजवाद पर उठना बड़ा मुशकिल है गिरना बड़ा आसान। इसमें बिल्कुल देर नहीं लगती है अगर कोई आदमी या दल गिरना चाहे तो बड़ी आसानी से फिसल सकता हैं।'[२]

लोहिया का एक और अपना, मौलिक विचार था। वह था 'विश्व नागरिकता' को वे दुनिया के किसी भी भाग, यानी देश में बिना पासपोर्ड के आने जाने के हिमायती थे।

---

१. लोहिया के विचार पृ. ३३।
२. लोहिया के विचार पृ० ३२।

वे देश को ग़रीब शोषित, पीड़ित और दलित जनता के सबसे बड़े हिमायती रहे। किसानों तथा मज़दूरों के मसीहा थे। विद्यार्थियों के प्रेरणास्रोत थे। वे ही भारत के सही माने में सजग प्रहरी थे। वे इतने स्पष्ट वक्ता, विद्वान् कर्त्तव्यपरायण थे कि किसी भी परम्परागत व्यक्तिपूजा के स्तम्भ को गिराने में कुशल थे। इसीलिये कोई भी, चाहे डॉ० लोहिया की नीतियों से सहमत हो या न हो पर वह उनकी निष्ठा, सच्चाई, लगन दूरदर्शिता से उनके मन में आदर या सम्मान करता था। हर व्यक्ति यह महसूस करता था कि उनका दिमाग़ अत्यन्त सक्रिय वा तेज़ था। उनका व्यक्तित्व प्रभावोत्पादक और गतिमान् था।

अपने इन सब ऐतिहासिक गुणों के साथ-साथ डॉ० लोहिया स्वयं भी इतिहास की सामग्री बन गये हैं। और भारतीय इतिहास में उनकी राजनैतिक मौलिकता का स्थान सदैव सुरक्षित रहेगा। जब भी यह प्रश्न उठेगा कि लोक-तन्त्र में अप्रिय सत्य साफ़-साफ़ तथा ज़ोर देकर उग्र स्वर में कहे जाने चाहिये या नहीं, सम्यक् समर्थन में उग्र कारवाई होनी चाहिये या नहीं, डॉ० लोहिया का नाम उभर कर लोगों के चिन्तन पर छा जायेगा। जनता को बार-बार स्मरण आयेगा। कि आज डा० लोहिया होते तो कितना अच्छा होता क्योंकि डा० लौहिया ने जो सोचा या, समझा था वह किया था।

●

जीवन परिचय

डॉ० राममनोहर लोहिया का जन्म २३ मार्च सन् १९१० (चैत्रवदी ३०, १९६६) को उत्तर प्रदेश फ़ैज़ाबाद ज़िला ग्रन्तर्गत ग्रकबरपुर नामक कस्बे में हुग्रा था। मूलतः उनका परिवार राजस्थानी था। पर उनके जन्म तक कई पीढ़ियाँ उत्तर प्रदेश में रहने के कारण एक प्रकार से उत्तर प्रदेशीय ही बन गया था। लोहिया के तीन, चार पीढ़ी पहले के पूर्वज मिरज़ापुर ज़िले में रहते थे ग्रौर वहीं पर लोहे ग्रौर कपड़े का व्यापार करते थे। लोहे का काम-काज बहुत ही पुराना था। एक तरह से उनके पूर्वजों का यह मूल-व्यापार था। धीरे-धीरे इस व्यापार ने परम्परागत व्यावसायिक रूप धारण कर लिया ग्रौर परिवार ने 'लोहिया' नाम हासिल कर लिया[1]। मिर्ज़ापुर ज़िले में लोहियों परिवार में मृत्यु संख्या काफ़ी बढ़ने लगी थी। परिवार में इस बात को लेकर काफ़ी घबड़ाहट थी। माड़वाड़ी, (माड़वार देश के रहने वाले) वैश्य परिवार में धर्म के पाप पुण्य पर विशेष महत्त्व दिया जाता है। खास कर स्त्रिया में मृत्यु का कारण ही धर्म से जुड़ गया। ग्रतः परिवार के हर लोग मिरज़ापुर को छोड़ कहीं ग्रौर निवास-स्थान बनाने के लिये सोचने लगे।

राममनोहर लोहिया के दादा श्री शिवनारायण जी पास की नगरी, (सरयू नदी के किनारे) ग्रयोध्या के पास ग्रकबरपुर में ग्रा बसे। इन शिव नारायण जी के चार पुत्र थे। तीन पुत्र की मृत्यु ग्रसमय में ही हो गयी थी। बचे थे केवल हीरालाल जी। इनका विवाह बिहार प्रान्त के मिथिला में चन्दा नामक कन्या से हुग्रा। इसी चन्दा ने चन्द्रमा के समान चमकते हुए प्रतिभा-शाली शिशु को जन्म दिया, जिसका नाम रखा गया राम मनोहर। राम मनोहर ग्रपने माता पिता के इकलौते पुत्र थे। इनको बचपन में माँ का कम, पर पिता का बहुत ही प्यार मिला। माँ का प्यार कौन नहीं जानता कि ग्रपने पुत्र के प्रति कितना होता है।

लोहिया परिवार में कई पीढ़ी तक सदस्य एक के बाद एक गुजर चुके थे।

---

१. लोहिया—शरद ग्रोंकार पृष्ठ ३४।

यह वात चन्दा के मन में बहुत ही खटकती थी । इसी लिये वह राम मनोहर की दीर्घायु के लिये ईश्वर से प्रार्थना करती थी । मन्दिरों में जाकर ईश्वर से भीख माँगती थी । पूजा पाठ में अपार धन व्यय करती थीं । पर कितने अभागे थे लोहिया बचपन में, माँ का प्रेम भी अधिक दिनों तक नहीं पा सके । माँ ढाई वर्ष के शिशु को छोड़ स्वर्ग सिधार गई ।

माँ के मरने के बाद १० वर्ष तक इनका पालन-पोषण दादी ने किया । १९२१ में राम मनोहर की दादी का देहान्त हो गया । जब उनकी दादी की भी मृत्यु हो गयी तो एक तरह से उसके बाद से उनका संपूर्ण पारिवारिक वाता-वरण ही समाप्त हो गया । अब घर में कोई भी औरत नहीं थी । परिवार में बचे केवल उनके पिता श्री हीरा लाल जी और पुत्र राम मनोहर । अब स्वभावतः राम मनोहर की सारी देख-भाल हीरा लाल जी के ऊपर थी । उनके पिता हीरा लाल जी बहुत बड़े गाँधीवादी थे । स्वदेशी आन्दोलन के समय बहुत ही काम किया कि खाने-पीने लाँयक बस कभी थोड़ा बहुत धन्धा कर लिगा वर्ना शेष समय चर्खा काटने या गान्धी जी के विचारों का प्रचार करने में ही बिताते । कभी-कभी गान्धी जी के आश्रम में भी रहने चले जाते थे । फिर उनकी यात्राओं में उनके साथ रहते । हीरा लाल जी का जीवन कहीं भी एक स्थान पर निश्चित रूप से व्यवस्थित नहीं रहा । इसीलिये लोहिया का बाद का अधिकाँश जीवन छात्रावास आदि में ही बीता ।

हीरा लाल जी का राम मनोहर के प्रति अगाध प्रेम और श्रद्धा की भावना थी । राम मनोहर लोहिया के वचपन की अवधारणाओ की आधार-शिला थी हीरा लाल जी का व्यक्तित्व । पिता देश-सेवा के कार्य में रत था, अतः पुत्र पर भी उसका प्रभाव पड़ना आवश्यक था । हीरा लाल जी जहाँ भी जाते अधिकतर राम मनोहर को भी साथ रखते । और उनको कहाँ और किसके यहाँ छोड़ ही सकते थे । राम मनोहर जब ९ वर्ष के थे उसी समय गान्धी जी के सम्पर्क में आ चुके थे । इसी लिए बचपन से ही गान्धी जी को काफ़ी नज़-दीक से देखने और परखने का मौक़ा मिला था ।

शिक्षा—लोहिया का जन्म एक साधारण परिवार में हुआ था । परिवार की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण ही लोहिया को निश्चित रूप से एक जगह शिक्षा नहीं मिल सकी । हम पहले ही बता चुके हैं कि माँ और दादी के मरने के बाद केवल पिता हीरा लाल जी और पुत्र राम मनोहर ही अपने परिवार में थे । और वह भी पिता ऐसे थे जो कि एक प्रकार से देश के लिये अपना सर्वस्व लुटा चुके थे । राम मनोहर की प्रारम्भिक शिक्षा अकबरपुर

में ही टण्डन नामक पाठशाला में हुई। लोहिया बचपन से ही बहुत चंचल स्वभाव के थे। प्राय: यह कहा जाता है कि जो लड़का बचपन में नटखट होता है वह बाद में प्रतिभाशाली होता है। यह बात हमको लोहिया के जीवन में मिलती है। कक्षा में सबसे छोटा होने के कारण ही प्राय: सभी शिक्षक उनसे प्रेम करते थे। इसका एक कारण यह भी था कि लोहिया बचपन से अपनी कक्षा में प्रतिभाशाली छात्र रहे। पढ़ाई के साथ वे खेल-कूद में भी रुचि रखते थे। उनका प्रिय खेल गुल्ली डण्डा और कबड्डी था। जो आज भी गाँवों या कस्बों में छोटे बच्चों का अपना प्रिय खेल है। चौथी कक्षा पास कर लेने के बाद उनका नाम विश्वेश्वरनाथ नामक हाई स्कूल में लिखाया गया। इसके बाद हीरा लाल जी बम्बई में रहने लगे। क्योंकि वहाँ से देश-सेवा का अधिक कार्य हो सकता था। अपने साथ राम मनोहर को भी लेते आये और बम्बई में ही माड़वारी विद्यालय में नाम लिखवा दिया।

१९२० का साल स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में अपना एक स्थान रखता है। इसी साल स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' के प्रेरक लोकमान्य बालगंगाधर तिलक का देहान्त हो गया। लोहिया की दृष्टि में देश के लिये यह अपार छति थी। पर गाँधी के नये विचार से उनको कुछ सांत्वना मिली। गान्धी जी ने आते ही देश के सामने एक नयी चीज़ रखी। वह था देश-प्रेम, राष्ट्र-प्रेम। विदेशी चीज़ों का बहिष्कार होने लगा। हर जगह प्रचार हो रहा था। लोहिया ने भी इसमें बड़ी उत्सुकता से भाग लिया। इन्हीं सब कार्यों के पीछे उनका पढ़ाई का एक साल नष्ट हुआ। पर इससे लोहिया को सन्तोष था। क्योंकि उनका यह दृढ़ विश्वास था कि देश-प्रेम, राष्ट्रीयता की भावना जितना विद्यार्थी समुदाय फैला सकता है उतना अन्य नहीं। लोहिया जब बम्बई में विद्यार्थी थे उसी समय १४ वर्ष की छोटी उम्र में गया में हो रहे कांग्रेस अधिवेशन में एक प्रतिनिधि की हैसियत उन्होंने भाग लिया था। यह एक उनके राजनीतिक जीवन की ऐतिहासिक घटना थी। १९२५ में लोहिया ने मैट्रिक अपनी कक्षा में सर्वाधिक अंक ६१ प्रतिशत प्राप्त कर पास किया।

लोहिया के जीवन में बनारस शहर एक प्रमुख स्थान रखता है। उनको बचपन से ही ज्ञात था कि भारत में प्राचीन काल से ही काशी नगरी विद्या की राजधानी रही है। अत: वे आगे की पढ़ाई बनारस में ही करना चाहते थे। पिता का कोई निश्चित व्यापार नहीं था। जीवन देश के लिये अस्त-व्यस्त था। अत: लोहिया की पढ़ाई का खर्च निश्चित रूप से समय पर नहीं दे

सकते थे । पर पुत्र के प्रति अधिक स्नेह होने के कारण वे उनकी हर बात से सहमत हो जाते थे । काशी विश्वविद्यालय में लोहिया का इण्टर में नाम लिखवा दिया । लोहिया बनारस में आकर अपने को धन्य समझने लगे । और वहीं से १९२७ में उन्होंने इण्टर पास किया । इसी बीच हीरा लाल जी का जीवन कलकत्ता में कुछ व्यवस्थित हुआ । लोहिया को आगे शिक्षा देने के लिये कलकत्ता बुलाया गया । और आगे की पढ़ाई राष्ट्रीयता के प्रतीक विद्यासागर कालेज में प्रारम्भ की गई । कलकत्ता में इस कालेज का वही स्थान था जो कि बनारस में काशी विद्यापीठ का । यहाँ के नवयुवकों के अन्दर आज़ादी की लहर थी, उनके हाथों में देश का भविष्य । लगता था देश की सारी समस्याएँ इनकी अपनी समस्याएँ थीं । इसी विचारधारा के बीच लोहिया भी आ मिले । और पोद्दार छात्रनिवास में रहने लगे । उनके साथी बने चौथमल सराफ़ और बालकृष्ण गुप्त ।

'लोहिया बचपन से ही कुशाग्र-बुद्धि के विद्यार्थी थे । उनको बचपन से ही तर्क-पूर्ण भाषण से प्रेम था । वाद-विवाद में बहुत ही अधिक भाग लेते थे । वे अंग्रेज़ी में बहुत ही सुन्दर भाषण करते । इसीलिये छात्रावास के अन्य विद्यार्थी उनसे बहुत ही अधिक प्रेम करने लगे थे । खास कर बंगाली विद्यार्थी छात्रावास में लोहिया का प्रमुख कार्य था विद्यार्थियों को इकट्ठा कर विचार-गोष्ठी करना । विचारों का आदान-प्रदान करना । देश की समस्याओं पर एक दूसरे के विचारों को फैलाना । यहीं पर लोहिया ने बंगला भाषा बोलने का भी काफ़ी अच्छा अभ्यास कर लिया था । एक तरह से वे बंगाल के नवयुवकों में घुल-मिल गये थे । इसी बीच अखिल बंग विद्यार्थी परिषद् की अध्यक्षता सुभाषचन्द्रबोस करने वाले थे । पर जब वे समय पर नहीं आये तो प्रथम बार एक ग़ैर-बंगाली नवयुवक ने अध्यक्षता की । वे थे राम मनोहर लोहिया ।

१९२८ में कलकत्ता में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ । इसके सभापति थे मोती लाल नेहरु । जवाहर लाल नेहरु भी कलकत्ता में आये । नेहरु लोहिया से मिलकर काफ़ी प्रभावित हुये और आगे एक दूसरे के बीच काफ़ी नजदीक होते गये ।

१९२९ में लोहिया ने साधारण आनर्स के साथ बी. ए. की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में पास की ।

लोहिया को शिक्षा से बहुत ही अनुराग था । वे अधिक से अधिक जानकारी हासिल करने के लिये उत्सुक रहते थे । बी. ए. करने के बाद : विदेश में जाकर उच्च शिक्षा ग्रहण करना चाहते थे । क्योंकि बाहर की दुनियाँ के रूप, रंग, ढंग

देखना उनके लिए जरूरी था। क्योंकि उनके इस विचार में नागरिकता विश्व की झलक थी जिसने आगे चलकर उनके विचारों को सुदृढ़ बनाया। पर उनके सामने आर्थिक समस्या बहुत ही भयानक थी। हीरा लाल जी ये चाहते थे कि राम मनोहर विदेश जाकर ही शिक्षा ग्रहण करें। पर जा ही कैसे सकते थे। अन्त में अग्रवाल जाति ने अपने संगठन के कोष से राम मनोहर को विदेश जाने का सारा खर्च अपने ऊपर ले लिया।

१९२९ की जुलाई में लोहिया उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिये चल पड़े। इंग्लैंड जाने के बाद एक राष्ट्र-भक्त देश-प्रेमी स्वछन्द विद्यार्थी के सामने एक समस्या उठ खड़ी हुई। क्या एक ऐसे देश में शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये जिस ने भारत देश को गुलाम बना रखा है। भारतीयों के साथ बुरा व्यवहार कर रहा है। उनके देश को लूट रहा हैं। अन्त में उन्होंने यह फ़ैसला कर लिया कि इंग्लैंड में कहीं भी शिक्षा नहीं ग्रहण करेंगे। उन्होंने विचारों के तत्कालीन केन्द्र, जर्मनी के बर्लिन के विश्वविद्यालय को चुना। और तत्काल बर्लिन के लिये चल पड़े।

बर्लिन विश्वविद्यायल—विश्वविद्यालय शिक्षा का वह केन्द्र होता है जहाँ विद्यार्थी अपना स्वत: अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। जहां देश-विदेश के विद्यार्थियों के बीछ अपने को पाता है। एक दूसरे के रहन-सहन, खान-पान, व्यवहार से परिचित होता है।

अगस्त १९२९ में लोहिया बर्लिन विश्व-विद्यालय में दाखिल हुए। लोहिया का प्रिय विषय था अर्थशास्त्र। इन दिनों बर्लिन विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र विभाग में प्रो० बर्नर सोम्बार्ट का बहुत ही अधिक नाम था। लोहिया इनकी देख-रेख में अपनी पढ़ाई चाहते थे। इसीलिये वे सर्व प्रथम प्रो० सोम्बार्ट से मिले। पर मिलनेपर लोहिया के सामने एक समस्या खड़ी हुई; क्योंकि सोम्बार्ट केवल जर्मन भाषा जानते थे। और अपने विद्यार्थियों को इसी भाषा के माध्यम से पढ़ाते थे। इसीलिये लोहिया को अपने देख-रेख में रखने की असमर्थता प्रकट की। लोहिया को इससे काफ़ी असन्तोष हुआ। पर वे अपने विचार पर अडिग रहे। वे प्रो० सोम्बार्ट से ही शिक्षा लेना चाहते थे। इसीलिये उन्होंने उनसे ३ महीने बाद मिलने का फ़ैसला किया।

इन्हीं ३महीनों के अन्दर लोहिया जी ने **जर्मन भाषा का अच्छा अभ्यास** कर, फिर प्रो. साहिब के पास गये और जर्मन भाषा में धारा प्रवाह वार्तालाप आरम्भ किया। इससे प्रो० सोम्बार्टकाफ़ी प्रभावित हुए। वे लोहिया को समझ गये कि यह एक बहुतही प्रतिभाशाली, लग्न वाला विद्यार्थी है। इसलिये उन्होंने

तत्काल ही लोहिया को अपनी देख-रेख में शिक्षा देना स्वीकार कर लिया।

यह है नये विचार का केन्द्र, बर्लिन विश्वविद्यालय यहाँ पर लोहिया ने अपनी शिक्षा प्रारंभ की। यहाँ पर भी लोहिया अपने आप को राजनीति से अलग नहीं कर सके। क्योंकि उनका दिमाग़ हमेशा स्वदेश की ओर लगा रहता था। वे विदेशों में भी भारत की स्वतन्त्रता की लहर को फैलाना चाहते थे। उसी गति से जिस गति में गाँधी जी देश में फैला रहे थे, अंग्रेज़ों के काले कानून को तोड़ रहे थे। १६३० के प्रारम्भ में नमक-कानून तोड़ने के लिये सविनय अवज्ञा आन्दोलन अपने नेतृत्व में छेड़ा। जिस आन्दोलन में अनेकों व्यक्ति जेल गये। निहत्थे लोगों पर अंग्रेज़ों ने लाठी चलाई। इस आन्दोलन ने लोहिया को काफ़ी प्रभावित किया। उनके लिये अंग्रेज़ों का अत्याचार अब असहनीय प्रतीत होने लगा। इसी बीच लाहौर में २३ मार्च को भगतसिंह को फाँसी दिये जाने के समाचार से वे और दुःखी हुए।

लोहिया वचपन से ही अन्याय के प्रति विद्रोह कर बैठने वाले थे। कहीं किसी परिस्थिति में भी, नहीं डरने वाले छात्र थे। इन्हीं दिनों राष्ट्रों के संघ, वाले लीग-आफ-नेशन्स की बैठक जेनेवा में हो रही थी। यह अंग्रेज़ों के अंग्रेज़ी-मित्र-राष्ट्रों की ही मुख्य रूप से संघ थी। इस सम्मेलन में भारत के प्रतिनिधि के रूप में बीकानेर के महाराज भाग लेने आए थे। जो मुख्य रूप से अंग्रेज़ों के दास थे। भारत में उन्हीं के शासन का गुण-गान करने वाले थे। लोहिया ने उनका विरोध करने का फ़ैसला किया। सोचिए यह कितना कठिन कार्य है कि विदेश में एक नौजवान भारतीय छात्र इस सम्मेलन का विरोध करने का निश्चय कितनी बड़ी मुसीबत ले लेना था। पर वह आज़ादी का दीवाना था। उसके लिये वह कुछ भी कर बैठने वाला था—चाहे वह देश हो या विदेश। अन्त में अनेक प्रकार की मुसीबतों का सामना करते हुए दर्शक-गैलरी में पहुँच ही गये। और ज्योंही बीकानेर के महाराजा खड़े हुये कि ज़ोर से सीटी मारी, जो इतिहास की अभूतपूर्व घटना थी। उनके भाषण में अवरोध उपस्थित कर दिया। सारा सभा-गृह आश्चर्य चकित हो गया। अन्त में पहचान कर लोहिया को दर्शक-गैलरी से निकाल बाहिर किया गया। पर निश्चय ही इस छात्र ने अपने आगे आने वाले जीवन कार्य की झाँकी प्रस्तुत कर दी।

राम मनोहर को बाहर निकाल तो दिया गया, पर वह भी कब चूकने वाले छात्र थे। वे जानते थे कि यह महाराजा भारत में हो रहे अंग्रेज़ी राज्य के विरोध की भावना और शान्ति की भावना को दबा देगा और सदस्यों को ग़लत प्रस्तुत करेगा। इसी लिए तुरन्त ही लोहिया ने एक खुला पत्र बैठक के

अध्यक्ष रूमानिया के प्रतिनिधि टिटलेसमू को लिखा। और सभी अखबारों को प्रकाशनार्थ भेज दिया। सभी तो नहीं 'लू श्रावै ह्यू मेनाइट' नामक अखबार ने उसे छाप दिया। लोहिया ने फौरन उसकी ज्यादा कापी खरीदकर सभागृह के द्वार पर खड़े होकर भीतर जाने वाले हर व्यक्ति को बाँट दीं और इस चिट्ठी में महाराज को चुनौती दे दी। इसमें साफ़ लिखा कि यह अंग्रेजों का दलाल है भारतीय जनता अंग्रेज़ो के विरोध में क्रान्ति के पथ पर है।

इस घटना को भारतीय अखबारों ने छापा और सर्वप्रथम इस छात्र ने समस्त भारत में अपनी निर्भीकता देश-प्रेम का उदाहरण प्रस्तुत किया, जिस से समस्त भारत आकर्षित हुआ।

लोहिया केवल इतने ही से शान्त बैठने वाले नहीं थे। बल्कि विदेश में रह करके हर भारतीय के दिल और दिमाग़ में स्वतन्त्रता की लहर पैदा करना अपना केवल उत्तर-दायित्व ही नहीं बल्कि जीवन का मुख्य कार्य समझते थे। इसी प्रेरणा से वहाँ के प्रवासी भारतीय विद्यार्थियों ने एक संस्था बनाई 'मध्य यूरोप हिन्दुस्तानी संघ"। लोहिया इस संस्था के मंत्री चुने गये। यह पहली एक संगठित संस्था थी जिसने भारतीय राष्ट्रीयता का प्रचार कार्य-विदेश में किया। लोहिया गान्धी जी से बहुत ही प्रभावित थे। इसीलिये विदेश में गान्धी-इरविन समझौता का गान्धी जी के आलोचकों का मुँहतोड़ जवाब दिया। और गान्धी जी के पत्र का अनुमोदन किया।

लोहिया जर्मनी में हिटलर के कई भाषणों में शामिल हुये। यद्यपि उनका 'नांज़ी पार्टी' वाले बहुत ही आदर करते, उनको सम्मान के साथ सभा स्थल पर स्थान देते। फिर भी लोहिया उनके प्रभाव में नहीं आये। और न ही उन्होंने कभी इस पार्टी को पसन्द ही किया। क्योंकि उनके विचार में यह जाति, कौम, देश, वैभव की नींव पर खड़ी थी।

इन्हीं सब राजनैतिक कार्य-कलापों के बीच लोहिया का शिक्षा कार्यक्रम भी चलता रहा। "१९३२ में लोहिया ने 'नमक और सत्याग्रह' विषय पर उन्होंने अपना शोध-प्रबन्ध पूरा किया और डाक्ट्रेट की उपाधि बर्लिन विश्व-विद्यालय से प्राप्तकर स्वदेश के लिये प्रस्थान किया।

इधर चौखम्भा (साप्ताहिक २३ मार्च १९६३) में श्री विरण्णा निम्माजी का एक लेख है जिसमें उन्होंने लिखा है कि २२ वर्ष की उम्र में बर्लिन विश्व-विद्यालय से लोहिया ने "राजनैतिक सिद्धान्त तथा अर्थशास्त्र" विषय पर डाक्टर की उपाधि प्राप्त की थी। इसलिये इधर उनके शोध विषय के सम्बन्ध में थोड़ा विवाद उठ खड़ा हुआ है। मैंने इस विषय पर पूर्ण जानकारी हासिल

करने की कोशिश की। इस सम्बन्ध में श्री रविराय श्री बद्री विशाल पित्ति श्री कृष्णनाथ जी आदि लोगों से चर्चा की। क्योंकि ये लोग स्वर्गीय डा० लोहिया के सम्पर्क में अधिक रहे हैं। श्री रविराय ने मुझे दिल्ली में बताया कि एक बार डा० लोहिया ने कहा था कि उनसे प्रो० सोम्बार्ट ने कहा कि तुम्हारे देश में गान्धी के नमक सत्याग्रह पर आग लगी हुई है। उसका अर्थनीति से क्या सम्बन्ध है इसी विषय पर तुम्हें शोध करना चाहिये। इसलिये मैंने Economics of salt 'एक्नोमिक्स आफ़ साल्ट' पर ही शोध-कार्य पूरा किया।

श्री कृष्णनाथ जी ने भी मुझे यही विषय बताया। उन्होंने मुझ से कहा कि मैंने इस विषय पर डॉ० लोहिया से लखनऊ जेल में चर्चा की थी। मेरा भी यही मत है कि लोहिया का उपरोक्त विषय ही शोध-कार्य का था क्योंकि हम बहुत दिनों से इस पर सुनते आ रहे हैं और आज भी बहुत से पढ़ने-लिखने वाले लोग जो लोहिया के सम्पर्क में रहे हैं इसी विषय को मानते हैं।

पर यह दुर्भाग्य है कि आज कहीं भी लोहिया का लिखा हुआ थीसिज़ मौजूद नहीं है। एक कापी बर्लिन विश्वविद्यालय में थी जो जर्मनी में क्रांति के समय विश्वविद्यालय के पुस्तकालय नष्ट हो जाने से वह समाप्त हो गई। एक कापी वे अपने साथ स्वयं भारत ला रहे थे तो रास्ते में ही हिटलरवादियों ने उनसे उनके साथ की सारी किताबों और सामान को छीन लिया था। जब वे भारत की बन्दरगाह पर आये तो उनके पास केवल पहने हुए कपडे थे। कलकत्ते जाने तक का किराया भी उनके पास नहीं था कि वे कलकत्ते पहुँचें। फलस्वरूप उन्होंने स्थानीय एक पत्रिका को लेख लिख कर दिया। उससे प्राप्त पैसे से वे कलकत्ते पहुँचे।

राजनीति में प्रवेश—स्वदेश आने पर लोहिया के सामने सबसे बड़ी कठिनाई आई आर्थिक समस्या को हल करने की। क्योंकि पहले से उनके पिता के पास कुछ भी निश्चित व्यापार या धन्धा नहीं था जिससे जीवन-निर्वाह ही कर सकें। देश का वातावरण भी बहुत खस्ता था। स्वतन्त्रता आंदोलन ज़ोरों पर था। प्रायः सभी नेता महात्मा गान्धी, पं० जवाहरलाल नेहरू, खान अब्दुल खफ्फ़ार ख़ाँ आदि जेलों में थे। अंग्रेज़ी शासन आन्दोलन को गोली, लूटमार, लाठी के बल पर दबाने का असफल प्रयत्न कर रहा था।

लोहिया जर्मनी से बहुत कुछ आशा लेकर आये थे, देश के लिए कुछ करने की, उसे सफलता के पथ पर ले जाने की। पर बिना पैसे के वे कर ही क्या सकते थे। वे चाहते थे किसी विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य करें ताकि

वहीं से विद्यार्थियों के दिल-दिमाग में स्वतन्त्रता की लहर पैदा की जा सके। लोहिया एक बहुत ही अच्छे वक्ता थे। वाक् शक्ति में वे जन्मजात प्रखर थे। इन्हीं दिनों भारत के कई विश्वविद्यालयों में उनका भाषण भी हो चुका था।

पर लोहिया ने तत्काल ही फ़ैसला कर लिया कि हमें देश-कार्य में जी-जान से जुट जाना है। यही हमारा जीवन का कार्य होगा। इसी बीच श्री आचार्य नरेन्द्रदेव, श्री जयप्रकाश नारायण, लोहिया आदि नेता एक सोसलिष्ट पार्टी का निर्माण करना चाहते थे और इस पार्टी को मूर्त रूप देने के लिए सम्मेलन १९३४ में पटना में बुलाया गया। लोहिया भी इसमें शामिल हुए और प्रतिनिधियों को अपनी प्रखर बुद्धि का परिचय दिया जिस पर आगे विचार किया जाएगा। १९३४ में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना के समय ही पार्टी के "कांग्रेस सोशलिस्ट" साप्ताहिक मुख-पत्र के प्रकाशन की योजना बनी और लोहिया इसके सम्पादक बनाए गए। क्योंकि इस समय केवल वही इस कार्य को क्रांति के साथ कर सकते थे। अपने लेखों में भारत के युवजन में आशा का संचार कर सकते थे। लोहिया ने इस कार्य को अपने हाथ में ले लिया और सफलता के साथ आगे बढ़ते गए। हालांकि उनको अनेक शारीरिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। जहाँ जगह मिली वहीं सो लिया, जो कपड़े मिले वही पहन लिए। और जो रूखा-सूखा खाना मिला वह खाकर उतने में ही सन्तुष्ट हो कर अपने जीवन के कार्य में लग जाते। लोहिया के जीवन के इस कार्य में अपने पिता हीरा लाल जी से भी काफ़ी सहायता मिली। क्योंकि हीरालाल जी को भी वही बातें पसन्द होतीं जो लोहिया को प्रिय थीं। सच्चे माने में पिता-पुत्र एक घनिष्ट मित्र के रूप में भी हमारे सामने अपने व्यक्तित्व की छाप छोड़ देते हैं।

सन् १९३५ में कांग्रेस का अधिवेशन पं० जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता लखनऊ में हुआ। लोहिया भी इस अधिवेशन के प्रतिनिधि थे। यहीं पर कांग्रेस ने अपने अखिल भारतीय समिति के अन्तर्गत एक पर-राष्ट्र-विभाग खोलने का निर्णय किया, जिसका उद्देश्य था भारतीय कांग्रेस संगठन का सम्पर्क अन्य अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संगठनों और दूसरे संगठनों से कायम करना। पं० जवाहरलाल नेहरू १९२८ से ही लोहिया से प्रभावित थे। उनकी छोटी उमर से ही उनकी सूझ-बूझ से परिचित हो चुके थे। इसीलिए उन्होंने लोहिया को इस पर-राष्ट्र-विभाग के मन्त्री पद के लिए उपयुक्त समझा। फलस्वरूप लोहिया को कलकत्ता से सम्पादन का कार्य छोड़ पं० नेहरू की जन्मभूमि इलाहाबाद में आना पड़ा। और उन्होंने बहुत ही निष्ठा के साथ इस कार्य को

नई दिल्ली अप्रैल १९७० को लोहिया के बाद जनवाणी दिवस पर घायल आदिवासी।
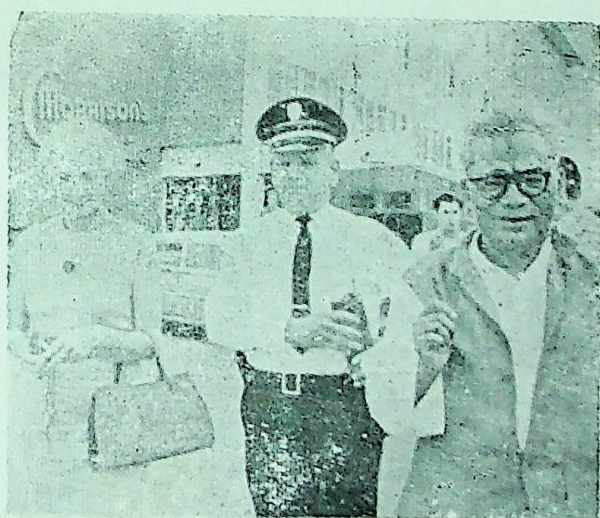
काले-गोरे के अलगाव के कानून को तोड़ते हुए अमेरीका के
होटल में गिरफ्तारी। श्रीमती रूथ स्तेफेन,
पुलिस अधिकारी और लोहिया १९६४।
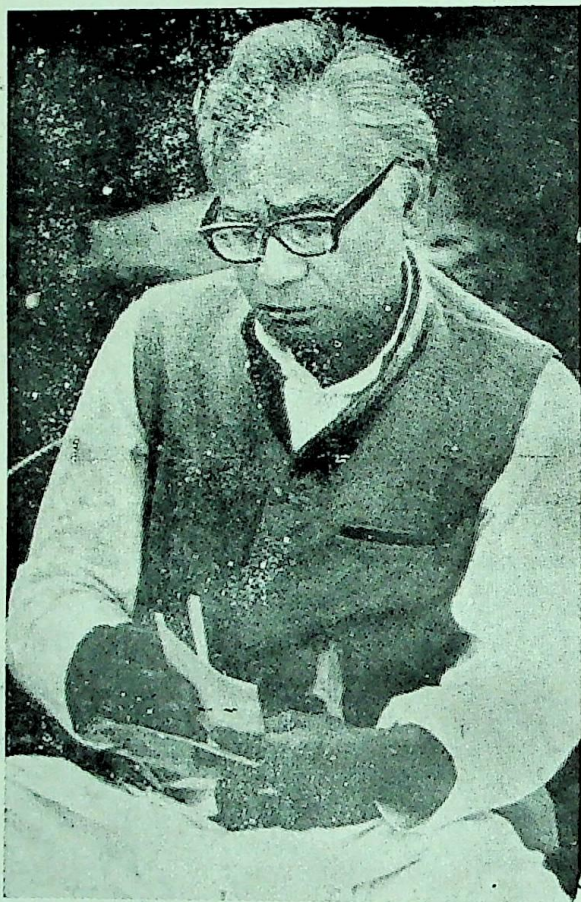
दूरदर्शी डॉ राममनोहर लोहिया।

किया। इसका फल यह हुआ कि जल्द ही भारत की राजनीति का सम्पर्क अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति से क्रमशः बढ़ता गया। इन्हीं दिनों लोहिया का घनिष्ट सम्पर्क पं० नेहरू के परिवार से होता गया। लोहिया अधिकतर पं० नेहरू के घर आनन्द भवन में ही रहते, साथ-साथ खाना खाते और राजनैतिक समस्याओं पर विचार करते। पं० नेहरू लोहिया को 'उगता सितारा' कहते। क्योंकि वे समझ गए थे कि भारतीय राजनीति के आने वाले समय में यह नौजवान अपनी अनूठी भूमिका अदा करने वाला है।

लोहिया इस पद पर सन् १९३६ से १९३८ तक कार्य करते रहे। अन्त में जब १९३८ के लाहौर कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का अधिवेशन हुआ, और उसमें वह राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सदस्य चुने गए, तब उन्होंने इस पद से इस्तीफ़ा दे दिया था। क्योंकि कांग्रेस कार्यकारिणी ने यह नियम बना दिया कि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की कार्य-समिति का सदस्य इस विभाग का मन्त्री नहीं रह सकता। अब लोहिया अपना सारा समय कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के संगठन और प्रचार में लगाने लगे।

आज़ादी की लड़ाई और लोहिया की भूमिका

भारत में आज़ादी की लड़ाई के ऊपर प्रकाश डालने वाली कोई भी पुस्तक पूर्ण नहीं है। क्योंकि अभी तक जो भी पुस्तकें लिखी गयी हैं वे एकांगी हैं। भारत सरकार ने राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास लिखने के लिये एक समिति नियुक्त की है। लेकिन १८५७ का जो इतिहास भारत सरकार के तत्त्वावधान में लिखा गया है उससे हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि सम्भवतः राष्ट्रीय आन्दोलन के सरकारी इतिहास में भगत सिंह को हत्यारा कहा जायेगा सुभाष बोस फ़ासिस्ट और ४२ के विद्रोहियों को गुण्डे और लुटेरे; इसलिये कि लंदन के महान् उदारवादी लोग इन्हें यही घोषित कर चुके हैं।[1]

अगस्त १९४२ के विद्रोह के बारे में भी कुछ पुस्तकें लिखी गई हैं। पर इन में राजनैतिक इतिहास से सम्बन्धित तथ्यों का अभाव है। इन में केवल ब्रितानी सरकार द्वारा किये गये अमानुषिक दमन और अत्याचारों का लोमहर्षक वर्णन इस दृष्टि से किया गया है कि पढ़ने वाले के मन में केवल विदेशी शासन के प्रति घृणा पैदा हो। इतिहास कभी भी एकांगी नहीं लिखा जाना चाहिये। उसमें ऐतिहासिक तथ्यों का होना नितान्त आवश्यक है। किसी भी आन्दोलन या विद्रोह के संगठन, उसकी कार्यप्रणाली, सञ्चालन, कार्यकर्त्ताओं की सूझबूझ आदि पर प्रकाश डालना राजनैतिक इतिहास में आवश्यक बातें हुआ करती हैं।

सन् १९४२ तक आते-आते गांधी जी ब्रितानी सरकार से तंग आ गये। भारतीय जनता का असन्तोष अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था। क्योंकि आज़ादी हासिल करना ही एक पूर्ण मकसद था। इसलिये देश की जनता क्रान्ति के किनारे खड़ी थी। गांधी जी देश की जनता की भावना से पूर्ण रूप से अवगत हो कर ८ अगस्त, १९४२ को बम्बई में कांग्रेस महासमिति में 'भारत-छोड़ो' प्रस्ताव लाये। इस प्रस्ताव के आते ही क्रान्तिकारी युवजन झूम उठे। अहिंसा में अटूट विश्वास रखने वाला महात्मा बोल उठा "एक-एक बच्चा भी वीर बन जायेगा। हम अपनी आज़ादी लड़ कर प्राप्त करेंगे। वह

---

१. दिनमान १७ अगस्त १९६९ पृ० ३६।

आकाश से टूट कर हमारे सामने नहीं आ सकती।...मैं आप को बताता हूँ कि मैं पक्का बनिया हूँ और मेरा सौदा स्वराज्य प्राप्त करना है।"

इस प्रस्ताव का अपूर्व स्वागत हुआ। चारों तरफ़ आज़ादी की आशा का सञ्चार हुआ। लेकिन 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव स्वीकृत होने के कुछ घण्टो के अन्दर ही अर्थात् ६ अगस्त को चार बजे सुबह गान्धी जी और काँग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य गिरफ़्तार कर लिये गये। ब्रितानी सरकार ने आन्दोलन को कुचलने के लिये दमनात्मक गिरफ़्तारियां आरम्भ कर दीं और कुछ दिनों के अन्दर ही सारे देश में लगभग १५००० व्यक्ति बिना मुकद्दमा चलाये नज़रबन्द कर लिये गये। करीब-करीब कांग्रेस के सभी स्तरों के प्रमुख कार्य-कर्त्ता गिरफ़्तार कर लिये गये। अब देश में आन्दोलन को चलाने वाले दो ही तरह के लोग रह गये थे :

१. कांग्रेस के वे कार्य-कर्त्ता जो पुलिस के हाथ से बच गये थे।
२. विद्यार्थी और किसान।

किसी भी देश में क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिये विद्यार्थियों और किसानों का सहयोग होना बहुत ही ज़रूरी है। खास कर कृषि-प्रधान देश में। और आन्दोलन को चलाने के लिये नेतृत्व की आवश्यकता ज़रूरी है। वे कार्य-कर्त्ता जो पुलिस के हाथों से बच गये थे इसमें अधिकांश समाजवादी थे : इन लोगों ने ही आन्दोलन का संचालन करने के लिये एक केन्द्रीय समिति बनायी। जिन में मुख्य रूप से डा० राम मनोहर लोहिया, अच्युत पटवर्धन, सादिक अली, राम नन्दन मिश्र, मोहन लाल सक्सेना, श्रीधर महादेव जोशी, साने गुरु जी, सुचेता कृपलानी, अरुणा आसफ़अली आदि थे। और इन लोगों के गुप्त नाम रखे गये। राम मनोहर लोहिया को 'डाक्टर', अच्युत पटवर्धन को 'कुशूम' सुचेता कृपलानी 'दीदी या बहन जी', अरुणा आसफअली को 'कदम' के नामों से संबोधित किया जाता था।[1]

आन्दोलन को व्यवस्थित रूप देने के लिये एक गुप्त रेडियो की स्थापना की गई, जिसका नाम "कांग्रेस रेडियो" रखा गया। इस गुप्त रेडियो के संचालक डा० राम मनोहर लोहिया बनाये गये। और कौन इस कठिन कार्य को लेकर अपने जीवन को खतरे में डाल सकता था। लोहिया ने तो अपने जीवन को देश की खातिर खतरे में डालना बचपन से ही सीखा था। पर दुर्भाग्य है कि न तो इस घटना का और नहीं जो केन्द्रीय समिति इन नेताओं

---

१. Spontaneous Revolution, by F. G. HUTCHINS. P.291.

ने आन्दोलन को चलाने के लिये बनाई थी इसका किसी आन्दोलनात्मक इसिहात की पुस्तक में व्यवस्थित रूप से वर्णन किया गया है।

८ अगस्त की रात को ही लोहिया को गिरफ़्तार करने के लिये पुलिस ने छापा मारा। पर लोहिया तत्काल ही भूमिगत हो गये। क्योंकि अगस्त आन्दोलन की रूप-रेखा उन्हें पहले से ही मालूम थी। और इसके लिये तैयार रहने के लिये उन्हों ने पहले ही अपने सदस्यों से स्पष्ट कह दिया था।

बम्बई जाने से पहले ही 'अखिल भारतीय किसान सम्मेलन' बेदौल (मुज़फ़्फ़पुर, बिहार) में सदस्यों से स्पष्ट कह दिया कि "इस बार ग़फ़लत न होने पावे। यह आख़िरी लड़ाई होगी। क्रान्ति की तैयारी किये रहो। जैसे ही बम्बई से हरी झंडी दिखाई जाए, बस मौका मिलते ही टूट पड़ना होगा। इस बार पार्टी के जो सदस्य गिरफ़्तार हो जायेंगे, वे निकम्मे समझे जाएँगे... असली माने में यह क्रान्ति समाजवादियों को ही चलानी है।"[1] इससे सिद्ध होता है कि गान्धी जी प्रस्ताव के पहले लोहिया से विचार-विमर्श कर चुके थे।

फिर अब पूछना क्या था? लोहिया ने गुप्त 'कांग्रेस रेडियो' से अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। प्रायः गुप्त रेडियो का केन्द्र कलकत्ता और बम्बई में रखा गया। बम्बई रेडियो में लोहिया की सहायक भारत मां की बहादुर बेटी उषा मेहता थी। देश की जनता की हिम्मत बढ़ाने और आन्दोलन को तीव्र गति की ओर ले जाने में इस रेडियो ने बहुत ही काम किया। इसने १३ अगस्त से १४ नवम्बर १९४२ तक यानी ९४ दिनों क्रान्ति में जीवन डाल दिया।

किसी आन्दोलन को चलाने के लिये गुप्त-सञ्चार-व्यवस्था नितान्त आवश्यक होती है। इसके द्वारा जनता की हिम्मत, उत्साह और लगन को बढ़ाया जा सकता है। दमनात्मक शासन की अफ़वाहों को केवल गुप्त रेडियो से ही बचाया जा सकता है। प्रचार आन्दोलन की रीढ़ हुआ करती है।

जगह-जगह बहुत तेज़ी से सारे देश में प्रदर्शन आरम्भ हो गये। कई जगह आन्दोलनकारियों ने थानों कचहरियों पर राष्ट्रीय झंडा लगाने की कोशिश की। इस में मुख्यतः विद्यार्थी थे। १० अगस्त से १५ अगस्त के बीच सैंकड़ों स्थानों पर ऐसे जुलूसों प्रदर्शनों पर गोलियां चलीं, भीड़ ने टेलीफ़ोन के तार काटे, सड़कों पर मोर्चे बन्दी की। दिल्ली के टाउन हाल में आग लगा दी गई।

तेज़ी से यह आंदोलन गाँवों तक फैलता गया। गाँवों में आन्दोलन के

---

१. लोहिया, ओंकार शरद, पृ० ११५-१६।

मुख्यत: तीन रूप थे :

१—स्थानीय थाना-कचहरी पर कब्ज़ा करना ।

२—तहसील या ज़िला मुख्यालय पर एकत्र हो कर अधिकार करना ।

३—रेल और डाक-तार व्यवस्था को ठप्प करना ।

प्रारम्भ में यह आन्दोलन पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में बहुत तीव्र गति से बढ़ा, क्योंकि इन प्रदेशों के विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने गाँव-गाँव जाकर आन्दोलन को बढ़ाने में अथक प्रयास किया । अब शहरों और कस्बों के प्रदर्शनों की तरह सैकड़ों गाँवों में भी प्रदर्शन होने लगे । स्थान-स्थान पर लोगों ने थानों पर अधिकार करना चाहा, डाकख़ाने जलाये गये । रेल की पटरियाँ उखाड़ी जाने लगीं । लोगों ने स्टेशनों पर धावा बोला । सुना है कई गाँवों में लोग रेलवे के टिकट उठा लाये । जिससे कुछ देर छोटे बच्चे अपना मनोरंजन करते रहे । इस प्रकार कई जगह रेल-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई । इन आन्दोलनों में पहले और तीसरे व्यापक पैमाने पर हुए ।

देखते ही देखते देश के ३ इलाकों में आन्दोलन के फलस्वरूप ब्रितानी शासन की सत्ता कुछ समय के लिये समाप्त हो गई । इस में से सर्वप्रथम उल्लेखनीय है बागी बलिया (उ० प्र०) । बलिया का स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में अपना अपूर्व स्थान रहा है ।

१८५७ की क्रान्ति भी बलिया के क्रान्तिकारी फ़ौजी वीर श्री मंगल पांडेय से प्रारम्भ हुयी थी । १९४२ की क्रान्ति की शुरुआत बलिया से ही हुई । बम्बई से हरी झंडी मिलते ही हज़ारों की संख्या में लोग शहर की ओर उमड पड़े । ज़िले को घेर लिया गया । ज़िले का अन्य ज़िलों से सम्पर्क तोड़ दिया गया । टेलिफ़ोन की तारें काट डाली गईं । रेल की पटरियां उखाड़ दी गईं । सारी सञ्चार-व्यवस्था ठप्प कर दी गई । इसमें चित्तु पांडेय और विद्यार्थियों की भूमिका विशेष थी । अन्त में बाध्य होकर ज़िला कलैक्टर को सरकारी तालियाँ ज़िला कांग्रेस अध्यक्ष को सौंपनी पड़ीं ।[1] अब यह ज़िला १९४२ में ही स्वतन्त्र था । सारी शासन व्यवस्था स्वाधीनता के अन्तर्गत थी । इस ज़िले में विद्यार्थियों ने जहाँ सबसे बहादुरी का कार्य किया था, वह था बैरिया का थाना । १८ अगस्त को विद्यार्थियों का जुलूस स्टेशन की ओर चला था । इसमें गाँवों के कई क्रान्तिकारी व्यक्ति भी थे । लोगों ने थाना घेर लिया । छात्र कौशला कुमार (ग्राम नारायणगढ, बलिया) ने थाना पर—दिवारों के

---

१. दिनमान, वही ।

सहारे चढ़ कर राष्ट्रीय झण्डा फहरा दिया। इस पर थानेदार ने गोली चलाने का आदेश दिया घमासान लड़ाई हुई। सर्व प्रथम वीर आजादी के दीवाने कौशल कुमार शहीद हुये। इसके साथ ही १८ व्यक्ति (सरकारी आंकड़ा) मारे गये। वर्षा का मौसम था। खबर आस पास के कई गाँवों में पहुँच नहीं पायी थी। थानेदार ने सपरिवार रात के वक्त वहाँ से भाग जाना ही उचित समझा। पर घटना दूसरे दिन ही बिजली तरह ज़िले में फ़ैल गई। इसकी ही प्रतिक्रिया थी कि लोगों ने बलिया शहर पर कब्जा कर लिया था?[1]

उधर महाराष्ट्र के सतारा ज़िले के कुछ इलाकों में भी ब्रितानी सरकार समाप्त कर दी गई थी। वहां भी स्वदेशी सरकार की स्थापना की गई जो महीनों काम करती रही। बाद में वहाँ के प्रमुख नेता नाना पाटिल को गरिफ़्तार कर ब्रितानी सरकार ने पुन: अपनी सत्ता स्थापित की।

बंगाल की जनता ने मिदनापुर ज़िले के तामलुक और कोंगइ तालुकों से ब्रितानी सत्ता को उखाड़ फेंका। लगभग अस्सी सरकारी स्थान, थाने या दफ़्तर जला दिये गये।

यह आन्दोलन उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल और आन्ध्र प्रदेश में बहुत बड़े पैमाने पर हुआ। सरकारी सूत्रों के अनुसार लगभग ४००० स्थानों पर तार काटने की घटनाएं हुई। ६०० डाकखानों को क्षति पहुँची, जिनमें ५० नष्ट हो गए, ढाई-तीन सौ थाने जला दिये गये। भारतीय जनता के रेल व्यवस्था को ठप्प करने की कोशिश का अनुमान इसी से लगया जा सकता है कि ब्रितानी सरकार को अगस्त से सितम्बर के महीनों में पाँच स्थानों पर हवाई जहाज़ों द्वारा मशीनगनों से गोलियां चलानी पड़ीं।[2]

ब्रितानी सरकार ने खास कर इन इलाकों में अमानुषिक दमनात्मक कार्य प्रारम्भ कर दिया। गाँव-गाँव में जिस पर ज़रा-सा भी संदेह हुआ उसे दमन

---

१. १९६६ में राष्ट्रीय महाविद्यालय द्वाबा (वैरिया) के छात्रसंघ के अध्यक्ष ने छात्रसंघ के उद्घाटन के लिये लोहिया को निमन्त्रित किया था। सभास्थल पर सबसे पहले लोहिया उस शहीद स्मारक पर गये और उन शहीदों को प्रणाम किया जो सन् ४२ के आन्दोलन में शहीद हुये थे। सभा में अपने भाषण के आरम्भ में ही उन शहीदों के नाम गिनाए गए और छात्रों को उन से देश-भक्ति का पाठ सीखने को कहा। बोले "हमें उन्हें भुलाना नहीं चाहिये क्योंकि वे शहीद आजादी की क्रान्ति के दूत हैं।"

२. दिनमान १७ अगस्त १९६९ पृ० ३६।

का शिकार बनावा गया। खेत जला दिये गये, घर के सामान आदि नीलाम कर दिये गये। ब्रितानी सरकार का यह दमनात्मक कार्य बलिया में विशेष रूप से किया गया।

सरकारी आंकड़ों के अनुसार १ हज़ार व्यक्ति मरे, दो हज़ार घायल हुये।[1] पर मरने वालों की संख्या इससे कई गुना ज्यादा थी। लगभग एक लाख व्यक्ति गिरफ़्तार किये गये। १५००० से अधिक को लम्बी सज़ा दी गई। केवल उत्तर प्रदेश में ३० लाख रुपया सामूहिक जुर्माने के रूप में अत्याचार, बलात्कार कर के कर वसूल किया गया। यह कार्य उन ज़िलों में विशेष रूप से किया गया जहाँ आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ा था।

स्त्रियों बच्चों को भी अमानुषिक यातनाएँ देने की अनेक घटनाएँ हुई। जिनमें मध्य-प्रदेश के अष्टी-चिमर क्षेत्र की घटनाएँ बेमिसाल थीं। यहाँ के स्त्री-पुरुषों को जिस तरह की यातनाएँ सहनी पड़ीं जो कि नाज़ी बंदी शिविरों की घटनाओं को भी मात कर देने वाली थीं। अष्टी-चिमूर में नौ व्यक्तियों को फाँसी दे दी गई, सिंध में एक बीस वर्षीय छात्र हेम कलानी को फाँसी हुई। अनेक आन्दोलन-कारियों पर हत्या, लूटमार आदि के अभियोग लगाकर उन्हें फाँसी के तखते पर लटका दिया गया, बहुतों को आजीवन कारावास दे दिया गया। पर यह आन्दोलन ब्रितानी सरकार के इस दमनात्मक कार्यवाहियों से रुका नहीं बल्कि बढ़ता ही गया। रेल व्यवस्था को अस्त-व्यस्त करने की कोशिशें तो और तेज़ हो गईं।

८ अगस्त सन् १९४२ को प्रस्ताव पास होते ही लोहिया भूमिगत हो गये थे। और आन्दोलन की रीढ़ वही थे। उन्होंने भूमिगत होकर आन्दोलन में प्राण फूँकने के लिये, ब्रितानी साम्राज्य के उखाड़ फेंकने वाले विद्रोहियों के लिये बुलेटिनें और छोटी-छोटी किताबें लिखना प्रारम्भ कर दिया था; ताकि विद्यार्थी, मज़दूर, किसान, पुलिस के लोग सरकारी कर्मचारी आदि उससे प्रभावित हों।

जनमानस की हिम्मत, उत्साह और कर्तव्यपरायणता को बढ़ाने में 'जंगजू आगे बढ़' बहुत ही प्रभावशाली पुस्तिका सिद्ध हुई : "सिर्फ परिस्थिति के दबाव से हम लोग भूमिगत ज़िन्दगी गुज़ार रहे हैं। लेकिन हरेक को ख़ुद को आज़ाद समझना होगा। 'मैं आज़ाद हूँ', गाँधी का यह एलान ही हमारा मकसद है। ब्रिटिश राज्य के प्रति दबी हुई नफ़रत स्वाधीनता की प्रसन्न भावना

---

१. दिनमान, वही पृ० ३७।

में परिवर्तित होनी चाहिये। यश-अपयश की परवाह न करके स्वातंत्र्य उत्थान जनता को करना चाहिये। 'मैं आज़ाद हूँ' यही ललकार आज निहत्थे भारतीयों को अपनी कृति द्वारा ज़ाहिर करनी होगी।"[२] 'क्राँति की तैयारी करो' नामक लेख में वे लिखते हैं—"धुन के पक्के और शिक्षा पाये हुये पाँच-पाँच लोगों के ऐसे दस्ते तैयार किये जायें, जो क्राँति ज्यों ही शुरु हो, आगे बढ़ कर जनता का नेतृत्व करें और उसे कामयाबी तक पहुँचाएँ। बड़े से बड़ा बलिदान करके भी आप-से आप विद्रोह के लिये खड़ी जनता जो काम पूरे तौर से नहीं कर सकती, वे ही काम इन दस्तों के चलते आसानी से सम्पन्न हो सकेंगे। जुलूस पर गोली चलाने के लिये भेजे गये या अंग्रेज़ी सरकार के केन्द्रों की रक्षा पर तैनात किये गये सैनिकों के हथियार छोड़ने की बात हो; या सड़क के काटने, तार काटने, रेल की पटरियाँ उखाड़ने और रेलगाड़ियों का चलना बन्द करने की बात हो, या थानों पर, कचहरियों पर और सेक्रेटरियट पर जन-समूह को लेकर धावा करने की बात हो, इन कामों के लिये पहले से ही विशेष शिक्षा प्राप्त किये हुए नौजवानों के बने ये दस्ते कमाल कर दिखायें गे। जिन-जिन क्षेत्रों में ऐसे दस्ते होंगे वहां क्राँति शुरु होते ही अंग्रेज़ी राज्य का खात्मा चुटकी बजा कर किया जा सकता है और इनसे प्रोत्साहन पाकर दूसरे क्षेत्रों में भी क्राँति की ज्वाला धधक उठेगी और अंग्रेज़ी राज्य को स्वाहा कर देगी"।

निःसन्देह लोहिया ने उपर्युक्त लेख में जनता के लिये कार्य-क्रम तैयार कर दिया था। और यही हुआ भी। देश के सन् ४२ के आन्दोलन में लोहिया के इस सन्देश को जनता ने अपनाया और उसी तरह से कार्य किया। यातायात के साधन, संचार-व्यवस्था आदि को ही भंग करना जनता ने अपना लक्ष्य बनाया। इसमें काफ़ी सफलता भी मिली। यही विद्रोह के कगार पर खड़ी जनता की अपनी बगावत की विषय-सामग्री थी।

'आजाद राज कैसे बने ?' में उन्होंने आन्दोलन के संगठन और व्यवस्था पर प्रकाश डाल कर जन-मानस को कर्तव्यमार्ग पर आगे बढ़ाया था—"मैं दावे के साथ कहता हूँ कि अगर सूबे के हर ज़िले में सौ मजबूत और तैनात आदमी हों और एक ज़िले का दूसरे ज़िले के साथ ऐसा संगठन किया जाए कि सारे सूबे में एक साथ कुछ हो सके तो हम फिर से एक ज़बरदस्त और सफल क्राँति कर सकते हैं।"

---

२. ओंकार शरद, लोहिया, पृष्ठ १२२।

इसके इलावा लोहिया के अनेक क्रान्तिकारी भाषणों के रेकार्ड तैयार किए गए और समय-समय पर जनता के बीच बजा दिये जाते थे।

आन्दोलन को कैसे एक व्यवस्थित रूप दिया जाए, उसका संगठन वैज्ञानिक और चुस्त हो, इसी विषय में लोहिया को हमेशा चिन्ता बनी रहती थी। उनका भूमिगत जीवन भी एक लम्बी कहानी है। भूमिगत रहते हुये 'करेंगे या मरें गे' नाम से एक भूमिगत पत्रक के प्रकाशन और वितरण का भी कार्यक्रम चलाया। ये सारी बातें हमें सोचने के लिये बाध्य करती हैं कि सन् ४२ के आन्दोलन के लोहिया मुख्य नायक थे।

लोहिया ने अपना भूमिगत जीवन अधिकांश कलकत्ता और बम्बई में ही बिताया। पुलिस की सरगर्मी काफ़ी तेज़ थी। पर जब कलकत्ते में सरगर्मी होती तो लोहिया कोट-सूट, हैट, टाई बाँध फौरन लाट साहब हो जाते, रेल में प्रथम दर्जे के टिकट लेते और बम्बई के लिये मार्च कर देते। और जब बम्बई में सरगर्मी होती तो कलकत्ते को। उनके इस भेष में कोई परख भी नहीं सकता था कि यह स्वाधीनता आन्दोलन का संचालक है। लोहिया तो इस भेष में ब्रितानी राज के भक्त लगते थे।

कलकत्ते में लोहिया 'बाठिया जी' के नाम से भी जाने जाते थे। जबकि अंग्रेज़ी पौशाक पहन कर आते और 'वाठिया जी' बन शुद्ध मारवाड़ी भाषा में व्यापार की बात करते तो लोग उन्हें सटोरिया सेठ ही समझते इस भेष में निश्चय ही उनका कोई स्वाधीनता आन्दोलन से सम्बन्ध नहीं जोड़ पाता।

लोहिया को अपने भूमिगत जीवन के कई दिन वीरान स्थानों, जंगलों में जाड़े के दिनों में भी बिना कपड़े के ही बिताने पड़ते थे। कई दिनों तक खाना भी नियमित नहीं मिल पाता था। फिर भी लोहिया को कोई ग़म नहीं था; क्योंकि गान्धी जी के सन्देश पर उन्होंने ब्रितानी साम्राज्य को स्वाहा करने के लिये जन-आन्दोलन छेड़ दिया था, और गान्धी जी के तत्काल ही गिरफ़्तार हो जाने से आन्दोलन को नियमित संगठनात्मक और तीव्र गति से आगे बढ़ाने का अपना उत्तरदायित्व समझ लिया था।

'कांग्रेस रेडियो' से ब्रितानी सरकार परेशान थी। अत: उस का पता लगाने उसे ज़प्त करने और उसके सञ्चालक को कठोर दण्ड देने के लिये देश के बड़े शहरों में व्यापक रूप पर छापा मारना आरम्भ कर दिया था। लोहिया के लिये कलकत्ते में रहना भी अब असम्भव प्रतीत होने लगा। अत: उन्होंने आज़ाद नेपाल की भूमि को सुरक्षित समझा और फ़ौरन ही कलकत्ता छोड़ नेपाल को प्रस्थान कर दिया।

हज़ारी बाग़ जेल से भाग कर श्री जय प्रकाश नारायण, श्री रामनन्दन मिश्र और कई अन्य साथी इन दिनों नेपाल की भूमि पर ही कोसी नदी के कछार पर 'बकरे के टापु' नामक पहाडी पर रह रहे थे। यहीं पर उन्होंने आन्दोलन को संगठन करने के लिये, गुरिल्ला वार—छापेमारी—के अभ्यास के लिये 'आज़ाद दस्ता' का संगठन किया।[1]

भूमिगत रेडियो प्रचार विभाग के अध्यक्ष डा० लोहिया भी यहीं अपना ट्रान्समीटर, बैटरी लिये पहुँच गये ताकि गरमा-गरम भाषण जनता को सुनने को मिल सकें। जनमानस में उत्साह, प्रसन्नता और दृढ़ता कायम रहे, उनमें आन्दोलन के प्रति निराशा न हो जाये।

अब नेपाल से ही आन्दोलन को संगठित रूप से चलाने के लिये कार्य-क्रम चलाया गया। उधर अंग्रेज़ी पुलिस भी इन क्रान्तिकारियों को गिरफ़्तार करने के लिये काफ़ी परेशान थी। अन्त में उसे सुराग़ मिल गया कि ये क्रान्ति-कारी इस समय नेपाल में हैं। अत: ब्रितानी सरकार ने नेपाल के ऊपर दबाव डालना प्रारम्भ कर दिया। और वह इन सारे क्रान्ति-कारियों को गिरफ़्तार कर फ़ौरन उन्हें भारत भेजने की मांग करने लगी।

नेपाल पुलिस ने 'आज़ाद दस्ता' के उस कार्यालय पर छापा मारा जहाँ जयप्रकाश बंगाली वेष-भूषा में ज़मींदार बने बैठे थे, अच्युत पटवर्धन की बहिन कुमारी विजया उनकी बेटी बन कार्य कर रही थी। और जहाँ दोस्त के रूप में लोहिया जयप्रकाश के मेहमान थे। इन सारे लोगों को गिर-फ़्तार किया गया। इन के अतिरिक्त पांच व्यक्ति और गिरफ़्तार कर बैल-गाड़ी पर सवार कर पुलिस हनुमाननगर की ओर चल पड़ी।

दूसरे दिन कचहरी में काठमाण्डू के आदेश पर हाकिम ने कैदियों का बयान लेना आरम्भ कर दिया। लोहिया का बयान बहुत ही निराला था। "हम तो इनके (जयप्रकाश) दोस्त हैं। साथ चले आये थे, हवा पानी बदलने। क्या जानते थे कि यहां की सरकार को अच्छे-बुरे की पहचान ही नहीं है। शरणार्थी पर भी क्या इतनी सख्ती होती है? नेपाल एक हिन्दू राज्य है। सारी दुनिया में अकेला स्वतन्त्र-क्षत्रिय राज्य। क्षत्रिय तो शरण में आये हुये के साथ ऐसा गन्दा व्यवहार कभी नहीं करते। बल्कि शरणार्थी की सहायता करना उनकी परम्परा रही है। फिर हम तो किसी तरह भी नेपाल के अप-राधी नहीं हैं। फिर हमें क्यों सताया जा रहा है? नेपाल स्वतन्त्र राज्य है

---

१. लोहिया, ओंकार शरद, पृ० १२७।

और स्वतन्त्र होकर वह अंग्रेज़ों की बात मानने को किसी रूप में भी विवश नहीं है। अंग्रेज़ों की ऐसी चापलूसी कर के नेपाल अपनी स्वतन्त्रता वा मर्यादा पर आघात करता है, स्वतन्त्रता को अपमानित करता है। दुनिया का कोई भी अपराधी इंगलैंड पहुँच कर अपने को सुरक्षित समझता है। फिर नेपाल की भूमि तो इंगलैंड से कई गुना अधिक पवित्र है। राज्य भी इंगलैंड से ज़्यादा धर्मनिष्ठ है। नेपाल की स्वतन्त्रता ही तो भारत के लिये प्रेरणा है। क्या अब भारत के लोग नेपाल के प्रति अपनी श्रद्धा खो दें? नेपाल को तो हमारी रक्षा करनी चाहिये, न कि इस प्रकार परेशान और हैरान।"

उधर 'आज़ाद-दस्ते' के एक प्रमुख कार्य-कर्त्ता श्री सूरज नारायण ने शिनाख्त के लिये भारत से आने वाली सी० आई० डी० के पहुँचने से पहले ही जेल पर धावा बोल इन लोगों को छुड़ाने की योजना बनाई। उधर नेपाल सरकार गिरफ्तार लोगों पर कानूनी कार्यवाही कर रही थी। इधर 'आज़ाद-दस्ते' के कुछ ही दिनों में अभ्यस्त गुरिल्ला वार छापेमार लड़ाई के कार्य-कर्त्ताओं ने अपनी योजना बनाई।

सूरज नारायण के नेतृत्व में ३५ साथी ने ३ बन्दूक, १ राइफ़ल, एक डाइनामाइट बाकी सब बाँस के लट्ठे से लैस मुक्तिवाहिनी फ़ौज लेकर जेल की ओर चल पड़े। रात में सर्वप्रथम संचार-व्यवस्था ठप करने के लिये काठमांडू से जोड़ने वाली टेलीफ़ोन की लाइन काट डाली गई। फिर जेल के पास बनी सिपाहियों की झोंपड़ियों में तेल छिड़क कर आग लगायी गई। जेल के प्रायः सभी सिपाही अपनी झोंपड़ी को जलते देख भाग उठे। इधर रिवाल्वर से गैस की बत्ती तोड़ डाली गई और जेल पर धावा बोल दिया गया। दोनों ओर से गोलियां चलने लगीं। कुछ देर तक घमासान लड़ाई हुई।

काफ़ी देर तक जेल के अन्दर जयप्रकाश और लोहिया नहीं समझ सके थे कि यह किस प्रकार की लड़ाई हो रही है। ये कौन लोग हैं। इस बीच किसी ने आहट भर कहा अपने लोग हैं। फिर पूछना ही क्या था? जेल से भी भगदड़ शुरु हुई। सभी भाग खड़े हुए। जयप्रकाश, लोहिया भी जेल से निकल भागे।

भगदड़ में सभी साथी एक दूसरे से बिछुड़ गये क्योंकि जिसको जिधर ही रास्ता मिला उधर ही भागा। इसमें कुछ देर तक सभी एक दूसरे के बारे में ज़्यादा सोचते। फिर सभी एक साथ जुटाये जा सके और तेज़ रफ़्तार से भागे। उधर पुलिस भी पीछा करती आ रही थी। बीच-बीच में सूरजनारायण 'हवाई फायर' कर उनको रोक देते।

रात भर जंगलों पहाड़ों को लांघते हुए ये क्रान्तिकारी भागते रहे। लोहिया के पैर की अंगुलियाँ कई जगह कट गईं, पैरों के तलुओं का चमड़ा छिल गया। सारा पैर खून से लथपथ था। उधर जयप्रकाश की भी वही स्थिति थी। पर उन्हें भागने की धुन थी। कोई ग़म नहीं था। यह भी होश नहीं था कि चोट कहाँ-कहाँ लगी है। साथियों ने हिम्मत बाँधी। वे अपने नेताओं के पैर खून से लथ-पथ देख द्रवित हो उठे। अपने कन्धे पर ढोने के लिये सोचने लगे। एक ने जयप्रकाश को कन्धे पर बैठाना चाहा। पर लोहिया कन्धे पर बैठकर चलने के लिये तैयार नहीं हुए। वे अपने पैर से ही चलेंगे। लँगड़ाते ही भागेंगे। पर किसी पर सवार नहीं होंगे।

सवेरा होते ही यह घटना बिजली की तरह फैल गई। थोड़ी रात लोहिया ने अन्य साथियों के साथ जिस घर में बिताई थी। उसी घर के लोग बाहर बैठ कर चर्चा कर रहे थे—"तीस हज़ार सुराजी फ़ौज ने जेल पर धावा करके क्रान्तिकारियों को छुड़ा दिया। बिजली की तोप साथ लाए थे। जिसे देखते ही सिपाही बेहोश हो गये थे।"[1]

सभी अपना-अपना वेष बदल कर आगे बढ़े। एक को शंका हुई। उसने पूछा आप लोग कौन हैं। लोहिया ने कहा "हरिहर ठाकुर नाम, जात नाऊ, ब्याहा का संदेश लेकर आए थे। रहने वाले हैं आरा ज़िले के।"

जब कोई रास्ते में भागे कैदी चोर-डाकू समझे उन्हीं से पूछ लेते। 'थाना कहाँ है? कितनी दूर है? हम लोग व्यापारी आदमी हैं। डाकूओं ने लूट लिया है। रपट लिखवानी है।' बस काम हो गया।

अन्त में लोहिया नेपाल सीमा लाँघ कलकत्ते तक भागने में सफल हो गये। इसी बीच वे आन्दोलन में और गति लाने के लिये सुभाष चन्द्र बोस से सम्पर्क स्थापित करना चाहा। पर सम्पर्क स्थापित नहीं हो सका। आसाम में जाना उनके लिये ख़तरे से खाली नहीं था। यों तो कलकत्ते में भी रहना अब मुश्किल हो चुका था। पुलिस की गतिविधियाँ काफ़ी तेज़ हो गई थीं। अतः लोहिया तत्काल कलकत्ता छोड़ बम्बई के लिये चल पड़े। अब तक करीब-करीब सभी बड़े-बड़े क्रान्तिकारी गिरफ़्तार किये जा चुके थे। अब आन्दोलन का पूर्ण रूप से नेतृत्व यही कर रहे थे। इस लिये पुलिस इनको विशेष रूप से गिरफ़्तार करने के लिये इनामों का इस्तहार अखबारों में छपवाती। कई गुप्त स्थानों पर छापा मार कर गिरफ्तार करने की योजना बनाई, पर लोहिया को गिरफ़्तार करने में असफल हो जाती।

---

१. लोहिया ओंकारशरद, पृ० १३२।

पुलिस को कलकत्ते से लोहिया के फ़रार होने का इस बार सुराग़ मिल गया। कलकत्ते की पुलिस ने तत्काल ही बम्बई पुलिस को सूचना भेजी, लोहिया कलकत्ते से भाग चुके हैं, बम्बई में तलाश करो। इस बार बम्बई की पुलिस ने बड़े पैमाने पर तैयारी की और ११ स्थानों पर छापा मारा जहाँ लोहिया के होने की आशा थी।[1] बाबुलनाथ रोड वाले उस मकान को घेर लिया। अन्त में पुलिस ने सारे मकान में तलाशी ली। और यहीं पर लोहिया को २० मई १९४४ को पुलिस ने एक कोठरी में गिरफ़्तार किया, जहाँ वे अपना भूमिगत जीवन व्यतीत कर रहे थे। इस प्रकार उनका भूमिगत जीवन ९ अगस्त १९४२ से आरम्भ होकर २० मई १९४४ को समाप्त हो गया। मई १९४४ में लोहिया की गरिफ्तारी के बाद आंदोलन समाप्त हो गया। बिहार के ७०० पुलिस कर्मचारियों के साथ ब्रितानी सरकार से विद्रोह करने वाले श्री रामानन्द तिवारी; अच्युत पटवर्धन और अरुणा आसफ़ अली तब भी गिरफ़्तार नहीं किये जा सके थे। लेकिन अब वे लोग कुछ करने की स्थिति में नहीं थे।[1]

केन्द्रीय-संचार-समिति के जो सदस्य गिरफ़्तार किये गये और जो सरकार की दृष्टि में ब्रितानी सरकार के लिये ख़तरनाक व्यक्तियों में से थे उनके लिये लाहौर में एक ख़ास जेल बनाई गई थी; जहाँ पर असह्य यातनाएँ दी जाती थीं। इसी जेल में लोहिया को बम्बई से गरिफ़्तार कर के लाया गया। और उनको यातना देने के लिये उस पुलिस अफ़सर की नियुक्ति की गई जो १४ वर्ष पूर्व अमर शहीद भगत सिंह के लिए मुकर्रर किया गया था। लोहिया के आते ही उसने अपना कार्य प्रारंभ किया उन्हें बराबर जगाकर रखने से। पहले तो यह क्रम दो-तीन दिन तक रखा गया। पर बाद में यह ७ दिन से १० दिन तक कर दिया। कभी भी जेल में आँख बन्द नहीं करने दी गई। यह अमानुषिक शारीरिक यातना थी। सम्भव है लोहिया को पाग़ल बनाने के लिये ऐसा किया गया हो ताकि उनका दिमाग़ फेल हो जाए। उनको शारीरिक यातना के साथ ही साथ मानसिक यातना भी देना प्रारम्भ कर दिया गया। ऐसी कोशिश की गई कि उनके मन में गुस्सा पैदा हो, वे झल्ला जायें ताकि उनका दिल कमज़ोर हो जाए। उनको दिन या रात में सोने न देने के लिये एक ही जगह पर दिन-रात खड़े कर दिया जाता था।

---

१. ओंकार शरद लोहिया, पृ० १३६।

२. दिनमान १७ अगस्त १९५९ पृ० ३७।

जब कभी उनकी आँख कुर्सी पर झपकी ले लेती थी तो पुलिस अफ़सर बिगड़ जाते और उनको जमीन पर घसीटना आरम्भ कर देते जिससे उनके हाथ-पैर खून से लथ-पथ हो जाया करते थे।

कभी-कभी लोहिया शरीर से काफ़ी सुस्त हो जाते थे। ऐसे समय में उनको स्नान करा दिया जाता था और फिर बलात् अनिद्रा का कार्य आरम्भ कर दिया जाता था।

यहां तक कि उनको शरीर की सफ़ाई का सामान, दांत के लिये ब्रश या पेस्ट या दातून तक नही दिया जाता था। प्रारम्भ में उन्हें कई दिनोंतक स्नान भी नहीं करने दिया जाता था। इसके विरोध में लोहिया ने जेल में अनशन भी प्रारम्भ कर दिया। इसके फलस्वरूप उन्हें केवल १० मिनिट का समय शरीर की सफ़ाई और स्नान करने को दिया गया।

जब बलात् जगाये रखने की अवधि दस दिनों और रातों की हो गई तब इसका लोहिया के स्वास्थ्य पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा। उनके नाक और मुँह से खून गिरने लगा। नाक के भीतर खून के छोटे-छोटे ढेले बन गये। जिसके कारण उनको तेज़ बुखार भी हो जाया करता था।

फिर भी लोहिया ने इन यातनाओं पर विजय प्राप्त कर ली। इसमें उनके आन्तरिक आत्मा की शक्ति ही सहायक होती थी। इस विषय में वे स्वयं लिखते हैं—"सभी भारतीय योग और हठयोग के बारे में और उसके प्रयोगों के बारे में जानते हैं। ऐसे दैववादी प्रयोग श्मशान भूमि में मानव या मुर्दे खोपड़ी के साथ होते हैं जिसमें बहुत लम्बे अरसे तक सतत जागरण करना पडता है। अपने बचपन में मैंने पिता जी के मुँह से पातंजल योग-सूत्र के दो संस्कृत सूत्र सुने थे। इस तरह योग का अनुशासन प्रारम्भ होता है और योग के अर्थ हैं—इच्छाशक्ति के स्रोतों का संयम। मुझे कभी-कभी ऐसा लगता जैसे बड़ी विवशता के दबाव में मैं ज़बरदस्ती हठयोग का प्रयोग कर रहा हूँ। मैं इच्छाशक्ति के स्रोतों के सम्बन्ध में भी जिज्ञासु था और सोचता कि क्या मैं उन पर संयम पा सकूँगा? शारीरिक यातना ने मन और मस्तिष्क को दर्दीला बना दिया था। लेकिन इन दर्दों के अलग-अलग वर्ग हैं, अलग-अलग काल में अलग-अलग अनुभूतियाँ हैं।"[1]

कभी-कभी ऐसा भी समय आता था जब कि यातनाएँ लोहिया के लिये असह्य प्रतीत होने लगतीं और बेहोशी भी आ जाती—तब वे चिन्तन करना

१. ओंकार शरद्, लोहिया, पृष्ठ १४६-७।

आरम्भ कर देते और अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँचते कि भविष्य में आने वाली यातनाएँ वर्तमान में केवल कल्पना में ही असह्य होती है। वर्तमान में मन में उसकी इन्तज़ारी का डर बना रहता है। और इसे वे काल का रहस्य मानने लगते। तब उनके लिये यातनाएँ बिल्कुल ही असह्य प्रतीत नहीं होतीं। वे आसानी से उन पर विजय प्राप्त कर लेते।

वे उसके स्मरण में लिखते हैं—"मैं अनुभव करता कि अक्सर यंत्रणाएँ असह्य भी लगती। लेकिन काल के रहस्य के साथ उन यंत्रणाओं का दर्द घटता रहता। कभी-कभी सह्य, असह्य लगने लगता और असह्य, सह्य।... वर्तमान को यंत्रणाएँ सदा ही सह्य लगतीं और भविष्य में आने वाली यंत्रणाएँ सदा असह्य लगतीं। दर्द की हर लहर अपने साथ भविष्य में आने वाले दर्द की कल्पना भी लाती। आने वाली यंत्रणा की कल्पना ही अधिक असह्य होती। जब कि बलात् अनिद्रा के समय आगामी क्षणों की कल्पना मुझे भयभीत करती तब बाद में मुझे अनुभव हुआ कि बीते क्षणों व वर्तमान क्षण केवल भय की कल्पना के परिणाम थे। दर्द का डर भविष्य का होता न कि वर्तमान का। क्योंकि हम भविष्य में नहीं जीते। हम केवल उसकी कल्पना ही करते हैं। वर्तमान में डर भी नहीं रहता। इसे ही मैं काल का रहस्य मानता हूँ। इसलिये एक संयमित व्यक्ति के लिये डर नाम की कोई चीज़ माने नहीं रखती।"[१]

"फ़िर भी नियति द्वारा निर्धारित यातना काल की लम्बाई की निश्चित कल्पना करना मैं अपने प्रति अन्याय मानता। हो सकता है कि इस काल का अंत ही न हो, जहाँ तक मेरे अपने जीवन का सम्बन्ध था। शायद नियति का ही यही निश्चय हो। कि मैं जब तक जिऊँ, इसी यातनागृह में रहूँ। मैंने सोचा, शायद मेरे जीवन और इस यातना-क्रम का अंत एक ही निर्धारित हो। **भविष्य की अंधेरी गुफ़ा में झाँक कर इतना ही देखा जा सकता था।"**[२]

लोहिया इन यातनाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकालते थे कि उनका जीवन इस यातना-क्रम के साथ जेल में ही अब समाप्त होगा। लोहिया की तरह अन्य बहुत से क्रान्तिकारी थे जिन्हें इस तरह से यातनाएँ दी जाती थीं। पर एक दूसरे को पता नहीं चलता था। बहुत दिनों तक तो लोहिया को भी यह नहीं मालूम था कि वे किस स्थान पर किस कोठरी में नज़रबन्द हैं। इसी लाहौर जेल में एक तरह जय प्रकाश नारायण को भी यही यातनाएँ दी

---

१. ओंकार शरद्, लोहिया १४७। २. वही, पृष्ठ १४८।

जाती रहीं। पर लोहिया को करीब ५, ६ महीने तक यह भी नहीं पता चल पाया था कि उनके प्रिय साथी जयप्रकाश को भी यहीं रखा गया है।

इन अनुभवी, वीर, साहसिक क्रान्तिकारियों को कहाँ रखा गया है किस स्थिति में ये लोग हैं। देश की जनता पता लगाने के लिए व्याकुल थी। उधर सरकार भी इन लोगों की नज़रबन्दी गुप्त रखना चाहती थी। क्योंकि इन लोगों को ही वह सबसे ख़तरनाक व्यक्ति मानती थी, आन्दोलन की रीढ़ समझती थी। पर अन्त में सुराग़ मिल ही गया। फल स्वरूप अनेक देश-भक्त वकील उनकी रिहाई के लिये कोशिश करने लगे। इसमें बम्बई के बैरिस्टर-पारडीवाला, लाहौर के प्रसिद्ध वकील जीवनलाल कपूर आदि थे। समाजवादी पार्टी की प्रभावशाली नेत्री ये पूर्णिमा बैनर्जी अपने साथियों की रिहाई के लिये अधिक प्रयास करती थीं। पर सभी व्यर्थ सिद्ध होता रहा। पारडीवाला को सरकार ने कैद भी करा दिया।

सरकार लोहिया, जयप्रकाश पर हत्या षड्यंत्र, राजद्रोह, लूट-मार आदि के अभियोग लगा कर, मुकद्दमा चला कर इन्हें नज़रबन्द बनाये रखना ही तो चाहती थी। इस लिये इन लोगों को सबसे अधिक यातना देने का शिकार बनाया गया।

इन्हीं दिनों लाहौर जेल से लोहिया ने सरकार के अमानुषिक व्यवहारों से तथा यातनाओं से तंग आकर तत्कालीन ब्रिटिश लेबर पार्टी के अध्यक्ष प्रो० हैरल्ड जे लास्की को एक चिट्ठी लिखी। और इस चिट्ठी को चुरा कर जेल से बाहर भेज दिया, यह चिट्ठी स्वतन्त्रता संग्राम का जीता-जागता उदाहरण है। जिसे स्वतन्त्रता-संग्राम के इतिहास में हमेशा याद किया जायेगा।

देश के प्रायः सभी अख़बारों ने इस पत्र को छापा। देश-विदेश में तहलका मचा। सरकार भी विचलित हुई। वह छानबीन करने लगी कि यह हुआ कैसे, पत्र बाहर कैसे गया? पर लोहिया कच्चे-कच्चे क्रान्तिकारियों में से न थे। वे किसी भी काम को सोच समझ कर जीवन पर्यन्त योजना-बद्ध करते थे। इसीलिए उन्हें हर काम में सफलता मिली।

इस विद्रोह के दमन के लिये किस तरह से ब्रितानी सरकार ने अमानुषिक व्यवहार किया है। हज़ारों की संख्या में निहत्थे लोगों के ऊपर गोली, लाठी की वर्षा की है। स्वयं लोहिया के पिता हीरा लाल जी को पुलिस ने किस निर्दयता के साथ बेहोश कर के Dharsana Salt Depot के पूर्णतया शान्त सड़क पर पीटा। जिनकी एक बस में मृत्यु हुई। और अब स्वयं किस तरह से मुझे और जयप्रकाश को सताया जा रहा है। यहाँ कानून का गला घोंटा जा रहा है।

Dr. Lohia's Letter to Prof. Laski

Dear Prof. Laski,

"As the newspaper of my country have not yet learnt to cut the qnestion hour in your Parliament, I have to trouble you over something you would know nothing about. The Under-Secretary for State, India, Mr. Arthur Henderson, has said that I have made unfounded allegations in respect of my detention in the Lahore Fort.

"I doubt if the Under-Secretary knows what my accusation is. The amazing thing is the reponse with which the British Government has asked my country to dismiss my accusation when, in practice, it has made some very awkward though successful at temptsat suppressing its publication. Aside frome odd bits, my country does not to this day know of what I have accused the Government.

"While still a prisoner in the Lahore Fort, but after I was allowed to write to the High Court, I made a Habeas Corpus application in December 1944, and supplemented it with somewhat fuller details in January 1945. When the hearing was held, the Judge ordered it to be secret. The Government had earlier taken an added precaution and banned, under one Ordinance or another, all reference in the newspapers to this Habeas Corpus case. At the hearing, the Judge declared his intention to go into the merits of my application, and I was examined on oath, and they were on the way to enquiring into my accusation, when he accepted the Indian Government's plea that I was under orders of transfer to another province and the proceedings were scotched.

"In the order dismising my applications, the judge also felt that the 'sole motive' of the India Government in detaining me was not to torture me. I regret I am unable to give you the exact wording of this strange order. I may add that I was arres.ed in Bombay in May 1944, and kept there for a month. If it was the Government's intention to secure the

King's peace, that could have been very well achieved by continuing to hold me in the Bombay jail or taking me to another as now, in my home province, the United provinces.

"In respect of prisoners ill-treated in the Lahore Fort, the Punjab Government has often amused the country by passing the responsibility on to the Government of India. The British Under Secretary has now almost passed it back to the Punjab Government. So far as it concerns me, tne Government of India is the culprit, for I have been its prisoner in law as in fact and recurre t orders for my ill-treatment emanated from it, and the Punjab Government is an associate in crime.

"No Government in your country could so interfere with Justice or shirk a criminal charge against it. On my transfer to this jail I made an application to the Federal Court, but the chief Justice of India felt that he had no jurisdiction of any sort. After several months' delay, I have succeeded in contacting my lawyer Mr. Madanlal Pittie, but I do not know how much longer it would be before he is supplied with copies of my applications to the Lahore High Court. These were siezed from me on my trasfer from Lahore to Agra."

Torture in Lahore Fort

"I do not intend to detail to you my rather long experience in the Lahore Fort, Should your Parliamentary Party or any of its members be genuinely interested, they could easily obtain the two applications to the Lahore High Court and the third to the Federal Court as court documents. I must add that these applications are a definite understatement of what I had to go through. In the first place, I have avoided mention of vulgarities and, in the second, the short scope of a court application and inadequate talents would have made me sound dramatic, if I had tried to communicate the dull but ugly cruelty as I felt it. I had hoped that the hearing in the court would bring it out more fully. I would here indicate that I was ill-treated in one way or another for over four months, that I was kept awake day after day, night after night, the longest

single stretch running into ten days; and that, when I resisted the police in their efforts to make me stand, they wheeled me round on my manacled hands on the matted floor. It took me some time to learn as a physical feat, and a lesson I should like never to forget, that no pain is actually unbearab e; it has either been unbearable in the past, but then the man is insensible or dead, or it appears to be unbearable as an imagined state of the next moment.

"It is true that I was not beaten nor were needles driven under roe-nails. I do not wish to make comparisons. A European, more than another, with his better sensibility to the human body and if he is not dulled with horrors, may realise what I underwent. But, beating and basti nadoing to death or near about it an forcing the human mouth to considerable trocities-these and worse have alse taken place. I will give you one or two instances, as readily come to my mind. One man swallowed poison in a police outpost of the Bombay Province, another threw himself down a well in a United Provinces jail; and of those who died through beating or ill-treatment after their arrest, there is no checking up except that in one Orissa jail out of over 300 in the country, the number of deaths among political prisoners rose to around 29 or 39-I cannot exactly recollect.

"My country has gone through a great deal in the past three and a half years. Men have been shot dead by the thousand, some out of moving vehicles as a test of marksmanship or to instil terror, women have been strung up on trees and lacerated or raped on the public road, and houses razed in the Lidice or Becassi fashion, though not as intensive in a single area but in the total vaster by the score. This is not surprising. Once it is understood that the country was reconquered in terror and vengefulness. the fact that nothing more massive than the August Rebellion is known to modern history explains itself. Three to four million died in the created famine. Already there was beating of an another kind fifteen years ago. My father, who died in a bus two weeks back, was

beaten unconscious in the wholly peacful raid of the Dharsana Salt Depot.

Aside from my regret that we had not enough time together it is as well that he is freed from successive imprisonments and worse in his own country, and from the oppressive sense of a nation's suffering that gose with these."

Orderly Rule Gone

"I have given you the national picture to fit into it my own experience as a very small bit. The British Labour Movement, as any other Socialist movement has been erring, because it views foreign rule on the ground of democracy or fascism or other political forms at home. If pre-conceived notions are cast away, it is just possible that the British system of ruling my country may be found to be slightly worse than any other, or it may be slightly better. That would depend on one's understanding of facts. No one would deny that British rule in Hindustan has, as a young brute, been heinously atrocious. It is again becoming so, now that it is declining into an aging ogre. The middle period of secured and comparatively orderly rule is g ne beyond recall. I do not know if it is at all possible to prevent or even to mitigate the ugly doings of this orge. But this I know, that the British Labour Movement will not even have made an attempt, if it theorises foreign rule on any other view than that of bloody youth and crueller decline, with the middle period, at any rate in my country, dead and gone.

"In face of all this, the Under-Secretary has had the brass to call me a liar. All Governments, as know to everybody, tell lies on the plane of high policy, but when a Government does so at the level of persons and minor things, it must be wholly mucked. Isn't there one man in the Parliamentary Labour Party who can bring this cut? Should it be said that the doers of these atrocities are in large numbers my own countrymen in British employ? I do not deny that There is a great deal of rottenness in my country and tha. what makes it so galling,

but the Englishman thinks he would not be here unless he made use of it.

Miss Usha Mehta's case

"Not wanting to release me, the Under-Secretary has also said that the Government is considering the question of my prosecution. I am now under detention for over a year and a half, apart from my imprisonment of two years early in the war, and if the Government has not yet completed considering this question, it may as well go on doing so indefinitely. There is a young woman in a Bombay jail, Miss Usha Mehta, perhaps the only woman political in the jails of that province, who is doing a term of four years for running a freedom radio I am not quarrelling with her sentence although, had this young woman of rare attainment and rare courage been Spanish or Russian, Your countrymen would have glamourised her into a heroine. She was held under detention for a year and for several months more as an under-trial, so that, if this judicial lapse had not taken place, she might have well completed her ferm and be out now. I might add that her trial and that of her colleagues was banned from the newspapers.

"Of the eight to ten thousand political prisoners, a large number of whome are classified as ordinary criminals, almost the entire lot are held in prison, aside, from the inherent inequity of their sentence or detention owing to one lapse or another even under the exiting law. A few days back, ten persons serving life terms were released, because the Allahabad High Court found they had been convicted on the evidence of an "unmitigated liar."

Jayaprakash Narayan

Mr. Jayaprakash Narayan, General Secretary of the Socialist party, is now under detention for over two years, apart from his earlier conviction and detention of nearly three years, and the India Government, on its own declaration, has been considering the quesutiou of his prosecution ever since arrest. It will presumably go on considering the question, meanwhile

holding him in prison. I do not know what kind of an answer Mr. Leopold Amery would have returned, had he been asked about my det ntion and presuming that he had still wanted to hold me in prison I like to think that he would have taken his stand on the usurper's unhedged power and would have just said that I was detained under the laws of the land, whatever they might be. That would have been better than a Labour Under-Secretary's screening of a bad deed.

"The Government is afraid of placing us on trial and it will continue to be so affrighted. Our trial may end up in its own trial. Except for the Indo-Russians, no one can possibly think that we have worked for Axis victory in intention or even in the unintended results of our deeds. In fact, Mr. Jayaprakash Narayan had wanted that an appeal be sent from the Freedom Press of this country to the British Socialist Movement, but I felt that there was not at that time a worthy enough head of the movement nor any actively favourable elements to whome such an appeal could be sent.

A Vague Charge

"Then the charge is levelled against us that we have tried to achieve our aim through violence. It is a vague charge and as such has no validity in law nor a place in any coherent political discussion. The drawing of the line between violence and non-violence as a method of political endeavour is an essentially Indian beginning and is wholly distinct from the accepted opposition between constitutional and unconstitutional means. It must, therefore, await recognition, until, if at all, the Indian National Congress is able to create a state with its politics. Such an event will also radically alter the concept of Government and it sobligations. Meanwhile, it does not lie in the mouth of the British Government or of any other, to throw about this charge, for the right to violence is, in the dominated world, linked up with some of the finest oflorts of man. If I were to follow the British prime minister, Mr. Clement Attlee. or theArchbisbip of Canterbury, I would have to

call it the sacred right to violence. For the rest, the Indian Penal Code is drastic enough, more drastic than any now prevalent. There is ghastly provision in it gainst the political kind of killing, or the very vaguest association with it, or sedition, or the mere owning of arms. I have not been put up for trial on any of these counts, nor the many hundreds, who have been detained almost throught the war and are still in prison several monthes ofter the last fascist was let out in your own country. In lendlng the smallest countenance to Government's plea that everybody still in prison is a Socialist and and advocnte of violence the British, Socialst is deliberately enabling the British Fascist in this county to work out his law-less ire against the Indian Socialist.

If Mr. Stehpon Davies, a member of your Parliamentary Party, thought it worthwhile to question the Under-Secretary about me he should also have acquired necessary information to bring out thrcugh supplementries how inept and unworthy the answer was. Questions asked in a hurry and in pursuit of an unpleasing duty or to create illusion are worse than no questions at all. For the present, at any rate, I have little desire for release and there is no urgency of any sort whatever. The British Government is welcome to hold me in prison as long as it lasts in this country. But the fact remains that there was not one man in your Parliamentary Party who could tell the Under Secretary with facts that he was lying, that he has not so far, nor shall, put me up for trial, that he did his habitual screening to make my detention more palatable to the stupid.

"All writing from a slave country to the ruler's land is largely ineffectual, and wearies, but I hope you have not asked yourself why I have not addressed this letter to your parliamentry Party.

"Please accept my warm greetings.[1]

"Yours sincerely,

Ram Manohar Lohia.

---

1. The price of Liberty—yusuf Meherally. P, 182.

प्रो० लास्को को डा० लोहिया का पत्र

प्रिय प्रो० लास्की,

चूँकि हमारे देश के समाचारपत्रों ने आप की संसद् में प्रश्न करना अभी तक नहीं सीखा है, इसलिए मैं आपको कुछ कष्ट देना चाहता हूं जिसके विषय में आप को कुछ भी जानकारी नहीं है। मि. ए. हेण्डरसन अण्डर सेक्रेटरी स्टेट, इण्डिया ने कहा है कि मैंने (लोहिया ने) लाहौर किले में अपनी नज़रबन्दी के सम्बन्ध में कुछ बेबुनियाद बयान दिया है।

मुझे सन्देह है कि अण्डर सैक्रेटरी को मालूम है कि मेरा अपराध क्या है ? आश्चर्य की बात तो यही है कि किस ढंग से ब्रिटिश सरकार ने मेरे देश में कहा कि वह मेरे अपराध को खत्म कर दे। लेकिन व्यवहारत: उसने मेरे अपराध को प्रकाशन में न लाने का बेहूदा, लेकिन सफल प्रयास किया। इन सबके अतिरिक्त आज तक मेरे देश को यह भी नहीं मालूम हुआ कि मैंने सरकार का कौन सा अपराध किया है।

लाहौर किले में नज़रबन्द रहते हुए भी, लेकिन बाद में मुझे हाई कोर्ट को लिखने की आज्ञा मिल गई। मैंने दिसम्बर सन् ४४ में एक हेबिअस कारपस प्रार्थना-पत्र तैयार किया और जनवरी ४५ में कुछ ज्यादा ब्योरा उसमें जोड़ दिया। जब केस की सुनवाई शुरू हुई तो जज ने इसको गुप्त रखने का आदेश दिया। सरकार तो पहले से ही काफ़ी सावधान थी और उसने एक न एक अध्यादेश जारी कर मेरे इस हेबिअस कारपस मुकद्दमे से सम्बन्धित विषयों पर समाचार प्रकाशन में प्रतिबन्ध लगा दिया था। मुकद्दमे की सुनवाई होने पर जज ने मेरे प्रार्थना पत्र के मेरिट्स पर विचार करने की इच्छा ज़ाहिर की। मेरे साथ जिरह की गई और वे लोग मेरे अपराध को खोजने लगे, जबकि उस ने भारत सरकार की बात को मंज़ूर कर लिया और मुझे दूसरे प्रदेश में ले जाने का आदेश हुआ तथा कार्यवाही बन्द कर दी गई।

मेरी दरख्वास्त खारिज करते समय जज ने यह महसूस किया कि मुझे नज़रबन्द करने में भारत सरकार का मुख्य ध्येय मुझे कष्ट देना नहीं था। मुझे दु:ख है कि मुझे उस अजीब आदेश के मूल शब्द याद नहीं हैं। मैं यह कह सकता हूं कि मुझे बम्बई में मई सन् १९४४ में गिरफ़्तार किया गया और वहाँ एक महीने तक रखा गया। यदि भारत सरकार की इच्छा राज्य की शांति को बनाए रखने की थी तो मुझे वहीं रखा गया होता या मुझे मेरे प्रदेश संयुक्त राज्य (यू. पी.) को ले जाना चाहिए था।

लाहौर किले में वन्दियों के साथ जो बुरा व्यवहार होता है उसके विषय में पंजाब सरकार अपना उत्तरदायित्व भारत सरकार पर डालकर देशवासियों को हमेशा सन्तुष्ट करती रही है और ब्रिटिश अण्डर सैक्रेटरी ने इस दायित्व को करीब-करीब पंजाब सरकार पर डाल दिया है। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है मैं भारत सरकार का बन्दी हूँ और मेरे साथ किए गये दुर्व्यवहार के लिए यही जिम्मेदार है और पंजाब सरकार इसमें सहायक है। आप के देश में कोई भी सरकार इस प्रकार न्याय में हस्तक्षेप नहीं कर सकती। जब मुझे यहां लाहौर में लाया गया तो मैंने फ़ैडरेल कोर्ट को एक पत्र लिखा, लेकिन चीफ़ जस्टिस आफ़ इण्डिया ने यह महसूस किया कि यह उनके अधिकार क्षेत्र के बाहर है। कई महीने बाद मैं अपने वकील श्री मदनलाल पित्ती से मिल पाया, लेकिन मुझे नहीं मालूम कि उनको मेरी दरख्वास्त जो लाहौर कोर्ट को दी गई थी, की प्रति-लिपि मिलने में कितनी देर होगी। आगरा से लाहौर जाने पर यह पत्र मुझ से छीन लिए नए थे।

लाहौर किले की यातनाएँ

मैं लाहौर किले के अपने लम्बे अनुभवों को विस्तृत रूप से बताना नहीं चाहता। यदि आप की संसदीय पार्टी या इसका कोई भी मैम्बर अभिरूचि ले तो उनको दो प्रार्थना-पत्र मिल सकते हैं जो लाहौर हाई कोर्ट में दिए गए थे और तीसरा फ़ैडरेल कोर्ट को। पहली बात यह है कि मैंने उन पत्रों में आप-बीती का पूरा उल्लेख नहीं किया है। दूसरी बात यह है कि कोर्ट एप्लिकेशन में पूरी बात नहीं दी जा सकती। मुझे आशा थी कि कोर्ट की सुनवाई में वे सब बातें प्रकाश में आयेंगी। मैं यह बतला देना चाहता हूँ कि मुझे चार महीने से अधिक यातनाएँ दी गई। रात-रात, दिन-दिन मुझे जगाया जाता था। और सबसे लम्बा अर्सा लगातार १० दिन तक का है। जब मैं पुलिस का विरोध करता था तो मुझे हाथ पाँव बांध कर चटाईदार फर्श पर घसीटा जाता था। इस शारीरिक क्रीड़ा के सीखने में मुझे कुछ समय लगा और इस पाठ को मैं कभी भुलाना नहीं चाहुँगा कि कोई भी यातना असहनीय नहीं है। यह बात सही है कि मुझे पीटा नहीं गया लेकिन मुझे जो यातनाएँ दी गई उन्हें एक समझदार योरोपियन अच्छी तरह समझ सकता है। मैं दो एक उदाहरण इस समय दे रहा हूँ जो मुझे तुरन्त याद आ रहे हैं। एक आदमी ने बम्बई राज्य में जहर खा लिया और दूसरे ने संयुक्त राज्य (यू. पी.) में कूएँ में कूद कर आत्महत्या कर ली। बहुत से लोग यातनाओं और पिटाई के

कारण मर जाते हैं। ३०० जेलों में से केवल एक उड़ीसा के जेल में ही राजनैतिक कैदियों की संख्या २९ या ३९ है जिसे मैं ठीक से याद नहीं कर पा रहा हूँ।

मेरे देश की दो तीन साल में और दुर्दशा हुई है। हज़ारों की संख्या में लोग गोली के शिकार हुए। औरतों को पेड़ों में लटका दिया गया या सड़कों पर बलात्कार किया जाता है। लेकिन यह विचित्र बात नहीं है। आधुनिक इतिहास में अगस्त का विद्रोह बेजोड़ है। तीस चालीस लाख आदमी कृत्रिम अकाल में मर गए। पिटाई तो १५ साल से चल रही थी। मेरे पिता, जो दो सप्ताह पहले एक बस में मर गए, को दर्शन साल्ट डिपाट के पूर्णतया शांत रोड पर बेहोशी की हालत तक पीटा गया। मुझे खेद है कि मुझे उनके साथ रहने का काफ़ी समय नहीं मिला और उनको बारम्बार जेल जाने से छुटकारा मिल गया। जिसकी (जेल की) दशा उनके अपने देशमें अत्यन्त बुरी है, देशवासियों के मन पर क्या बुरा प्रभाव पड़ता है ? और उनके साथ बुरी बीतती है।

आदेशीय शासन की समाप्ति

मैंने अपने छोटे से अनुभव का आपके सामने राष्ट्र का चित्र प्रस्तुत किया है। ब्रिटिश मज़दूर आंदोलन किसी दूसरे समाजवादी आंदोलन के रूप में ग़लती कर रहा है, क्योंकि यह विदेशी शासन को डैमोक्रेसी या फासिज्म या दूसरे राजनैतिक रूप के आधार पर सोचता है। यदि पूर्व विचारों को दिमाग़ से निकाल दिया जाय तो यह सम्भव है कि मेरे देश के ब्रिटिश शासन का तरीका अन्य तरीके से कुछ ही खराब हो सकता है या उससे कुछ अच्छा। यह तथ्य को समझने वाले के ऊपर निर्भर करता है। कोई भी इस बात से इन्कार नहीं करेगा कि हिन्दुस्तान में ब्रिटिश शासन एक जवान जानवर के रूप में बिल्कुल बर्बर हो गया है। यह फिर से बर्बर हो गई है और अब एक नरभक्षी दानव के रूप में बदल रही है। इसका सुरक्षित और आदेशीय शासन का मध्यकाल स्मृति से दूर हट गया है। मैं नहीं जानता कि इन यातनाओं को कभी भी ख़त्म या कम किया जा सकता है। परन्तु मैं जानता हूँ कि ब्रिटिश मज़दूर आन्दोलन ने कभी प्रयास ही नहीं किया होगा। यदि इनका सिद्धान्त ख़ूनी और राक्षसी विदेशी शासन का है तो यह मध्यकाल के साथ मेरे देश में मर चुका है।

अण्डर सेक्रेटरी ने मुझ पर झूठ बोलने का आरोप लगाया है। जैसा कि सभी जानते हैं कि सभी सरकारें एक उच्च सिद्धान्त के लिये झूठ बोलती हैं। लेकिन जब कोई सरकार व्यक्ति अथवा मामूली चीज़ों के स्तर पर झूठ बोलती

है तो उसका पूर्णतया तिरस्कार होना चाहिये। क्या संसदीय मज़दूर पार्टी में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो इसको प्रकाश में लावें? यह भी कहा जा सकता है कि इन अत्याचारों को करने वाले बहुत संख्या में विदेशी नौकरी में मेरे अपने ही देशवासी हैं। मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि मेरे देश में काफ़ी सड़न आ चुकी है और यही कारण है कि जिससे यह बदतर हो गई है। लेकिन अंग्रेज़ समझता है कि यदि वह इसका उपयोग नहीं करेगा तो वह यहाँ टिक नहीं सकता।

कुमारी उषा मेहता का मुकद्दमा

मुझे रिहा न करने की इच्छा करते हुए अण्डर सैक्रेटरी ने यह भी कहा है कि सरकार मेरे अभियोग के प्रश्न पर विचार कर रही है। लड़ाई की शुरूआत में २ वर्ष की नज़रबन्दी के इलावा मैं डेढ़ साल से नज़रबन्द हूँ और यदि सरकार ने अभी तक इस प्रश्न पर विचार करना समाप्त नहीं किया है तो यह अनिश्चित काल तक करती रहेगी। बाम्बे जेल में कुमारी उषा मेहता नाम की एक युवती है। सम्भवतः यह उस प्रदेश की एकमात्र राजनैतिक नारी है जो 'आज़ाद रेडियो' प्रचारित करने के अपराध में चार वर्ष की सज़ा भोग रही है। मुझे उसके फ़ैसले से कोई झगड़ा नहीं है। यद्यपि यह औरत 'जो अनोखी प्रतिभा और साहस वाली है यदि स्पैनिश या रसियन होती तो आपके देशवासी इसे एक बहादुर औरत कहकर प्रशंसा करते। वह एक वर्ष कई महीने तक अण्डर ट्रायल के रूप में नज़रबन्द की गई ताकि यदि यह जुडिशियल लैप्स हो गया होता तो उसकी सज़ा की अवधि पूरी हो जाती और वह रिहा कर दी जाती। मैं कह सकता हूँ कि उसका और उसके साथियों का मुकद्दमा प्रैस में जाने से रोक दिया गया।

आठ से दस हजार राजनैतिक कैदियों में से बहुत से आम कैदी है। ये सभी लागु कानून में कुछ न कुछ त्रुटि होने के कारण जेल में बन्द हैं। कुछ दिन पहले आजीवन कारावास के १० कैदियों को छोड़ दिया गया क्योंकि इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने यह पाया कि उनको वे-बुनियादी, झूठी गवाहियों के ऊपर सज़ा दी गई है।

जयप्रकाशनारायण

सोशलिस्ट पार्टी के महामन्त्री श्री जयप्रकाश नारायण अपनी तीन साल की नज़रबन्दी के इलावा दो साल से अधिक दिनों से नज़रबन्द हैं। भारत

सरकार अपनी घोषणा पर उनकी गिरफ़्तारी के समय से ही उनके अभियोग के प्रश्न पर विचार कर रही है। शायद उनको नज़रबन्द किये हुये ही यह विचार चलता रहेगा। मैं नहीं जानता कि मिस्टर लियोपोल्ड एमेरी क्या उत्तर देते। यदि मेरी नज़रबन्दी के विषय में उनसे पूछा गया होता, यह मानते हुये कि मुझे अभी तक जेल में रखना चाहते हैं। मैं सोचता हूँ कि उन्होंने अपनी दैनिक क्षमता के बल पर यही कहा होता कि मुझे देश का कानून वह जैसा भी हो, उसके मुताबिक ही नज़रबन्द किया गया है। यह एक लेबर अण्डर सैक्रेटरी द्वारा बुरे काम को छिपाने की अपेक्षा ज्यादा अच्छा होता।

सरकार हम लोगों को मुकद्दमे पर पेश करने से डर रही है। और ऐसा ही वह डरती रहेगी। हमारा मुकद्दमा इसी सोच में ही खत्म हो जायेगा। हिन्दू-रूसियों के इलावा सम्भवतः कोई भी यह सोचने की क्षमता नहीं रखता कि हमने अपनी आज़ादी को नज़र में रखते हुए सब काम किये। वास्तव में जयप्रकाशनारायण चाहते थे कि इस देश के फ्रीडम प्रैस से ब्रिटिश सोशलिस्ट पार्टी के पास एक अपील भेजी जाय। लेकिन मैंने अनुभव किया कि अपील भेजने का उचित अवसर नहीं है और न ही कोई उचित अधिकारी है जिसके पास भेजी जा सके।

बेतुका आरोप

इसके बाद हम लोगों पर यह आरोप लागया गया कि हम लोगों ने अपने उद्देश्य की पूर्ति हिंसात्मक ढंग से करने का प्रयत्न किया है। वह एक बेतुका स्पष्ट आरोप है। कानून में इसका कोई भी महत्त्व नहीं है। राजनैतिक प्रयत्न के तरीके के रूप में हिंसा और अहिंसा के बीच रेखा खींचना एक भारतीय शुरूआत हैं और यह पूर्णतया संविधानिक और असंविधानिक मान्यताओं के विपरीत है। इसलिये इसकी मान्यता की प्रतीक्षा करनी चाहिये जब तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अपनी राजनीति के अनुसार एक ऐसा ढाँचा नहीं बना लेती। ऐसा किये जाने पर सरकार का बड़ा यह तर्क भी बदल जायेगा। इस बीच ब्रिटिश सरकार को या किसी और को ऐसा आरोप नहीं लगाना चाहिये। क्योंकि हिंसा का अधिकार अंछादित दुनिया में आदमी का सबसे अच्छा प्रयत्न माना जाता है। यदि मैं ब्रिटिश प्रधान मन्त्री श्री क्लामेट एटले या कैण्टबरी के बड़े पादरी का अनुकरण करता तो मुझे हिंसा को मनुष्य का पवित्र अधिकार कहना चाहिये। बाक़ी के लिये भारतीय दण्ड धारा आज तक हुए, दण्ड धारा से अधिक कड़ी हैं। क्योंकि इसमें राजनीति या इसके साथ

सम्बन्ध या शस्त्रधारी होना बहुत बड़े दण्ड के पात्र हैं। मेरे ऊपर इनमें से किसी एक होने के नाते मुक़द्दमा नहीं चलाया गया और न ही उस देश में सैंकड़ों दूसरे कैदियों पर कोई ऐसा अभियोग है जो कि आज के लड़ाई के कई महीने बाद तक भी अभी तक नज़र बन्द हैं। इन सब के खिलाफ़ सिर्फ़ एक तर्क देना कि ये सब कैदी समाज वादी हैं और हिंसा के हिमायती हैं। ब्रिटिश साम्राज्यवाद का भारतीय समाज वादियों के खिलाफ़ कानून-रहित बर्ताव को बढ़ावा देना है।

यदि मिस्टर स्टेफ़ेन डेविसने, जो संसदीय पार्टी के सदस्य हैं, मेरे विषय में अण्डर सैक्रेटरी से पूछना उचित समझा होता तो उनको सूचना प्राप्त कर लेनी चाहिए थी कि सरकार का यह उत्तर कितना निराधार है। जल्द-बाज़ी में पूछा गया प्रश्न भ्रम पैदा करना प्रश्न न पूछने से भी बुरा है। इस समय अपने रिहाई की मुझे इच्छा नहीं है। मुझे जेल में रखने के लिए ब्रिटिश सरकार का स्वागत है जब तक वह इस देश में रहेगी। लेकिन वास्तविकता यह है कि आपकी संसदीय पार्टी में ऐसा क़ोई नहीं है जो तथ्यों के साथ अण्डर सैक्रेटरी से कहे कि वे झूठ बोल रहे हैं। और न ही उन्होंने अभी तक मुझे मुकद्दमे के लिए पेश किया है, न ही वे करेंगे और उन्होंने अपनी आदतों के अनुसार ऐसा बयान मेरी नज़रबन्दी को बढ़ाने के लिये दिया है।

शासक देश के प्रति एक ग़ुलाम देश से लिखना सभी निरर्थक होता है लेकिन मुझे आशा है कि आपने स्वयं अपने आप से पूछा होगा कि मैंने यह पत्र संसदीय पार्टी को क्यों नहीं लिखा।

कृपया मेरा हार्दिक अभिनंदन स्वीकार करें।

आपका—
राम मनोहर लोहिया

इसी बीच लोहिया और जयप्रकाश पर हाइफ़ोर्ट, में मुकद्दमा भी चलता रहा। देश के प्रायः सभी बड़े वकीलों ने इन क्रान्तिकारियो के मुकद्दमे की पैरवी बिना फ़ीस लिये ही करने का निश्चय किया। बाद में पूर्णिमा बैनर्जी और दो एक अन्य वकीलों को लाहौर किले में लोहिया से मिलने के लिए सरकार को विवश होकर इजाज़त देनी पड़ी। क्योंकि इन लोगों के मुकद्दमे ने देश और विदेश में भी हलचल पैदा कर दी थी। इजाज़त मिलने पर १९४४ में ही लोहिया ने कोर्ट में 'हैबिपस कार्पस' दरख़्वास्त लिखी। जनवरी १९४५ में एक और विस्तृत दरख़्वास्त दी गई।

तत् पश्चात् एकाएक सरकार ने लोहिया और जयप्रकाश नारायण की १९४५ में आगरा जेल में बदली कर दी। उधर इंग्लैंड में लेबर-पार्टी की सरकार बन गई थी। इस सरकार ने भारत के सम्बन्ध में बातचीत करने के लिये एक प्रतिदिन-मण्डल भारत भेजा। यह प्रतिनिधि-मण्डल आगरा जेल जाकर लोहिया, जयप्रकाश से भी मिला था। इस समय तक करीब-करीब देश के सभी प्रमुख नेता जेल से छोड़ दिये गये थे। पर लोहिया और जयप्रकाश को अब भी जेल में रखा गया था। गाँधी जी इससे बहुत ही नाराज़ थे। उन्हों ने सर्वप्रथम इस प्रतिनिधि-मण्डल के सामने लोहिया और जयप्रकाश की रिहाई की मांग की। देश की जनता भी यह मांग कर रही थी। बिना लोहिया और जयप्रकाश के यह वार्ता भी दिखलावा ही होगी।

एकाएक ११ अप्रैल, १९४६ को सरकार ने लोहिया, जयप्रकाश की रिहाई की घोषणा की। लोहिया के व्यक्तित्व उनके साहसिक मन और कार्य से भारतीय जनता अवगत हो चुकी थी। इसीलिये ११ अप्रैल, १९४६ को अपार भीड़ उन्हें देखने के लिये उमड़ पड़ी। जेल से निकलते ही एक बृहत् जलूस निकला और लोहिया, जयप्रकाश का स्वागत किया। उन्हें फूल-मालाओं से लाद दिया गया। सचमुच आज देश में बहुत खुशी का वातावरण था।

आज़ादी का सपना करीब दिखने लगा। और हुआ ऐसा ही। रिहाई के डेढ़ साल के अन्दर १५ अगस्त १९४७ को आज़ादी हासिल हुई।

आगरा से रिहाई के बाद जयप्रकाश पटना के लिये और लोहिया ने कलकत्ते के लिये प्रस्थान किया। इस बार आगरा और कलकत्ते के बीच के रास्ते में लोहिया की आँखें कई बार आसुओं से भर आईं। क्योंकि इस बार उन्हें अपने पिता से मिलने का सौभाग्य नहीं प्राप्त होगा। पिता ने तो जेल में मुलाकात के समय ही बहुत धीरे से कह दिया था कि अब शायद हमारी मुलकात तुम से नहीं होगी। और हुआ भी ऐसा ही। वे लोहिया के जेल में होते ही स्वर्ग-सिधार गए।

लोहिया के लिये वे एक आदर्श पिता थे। वे उनके रास्ते में कभी भी रुकावट पैदा नहीं करते थे। बल्कि लोहिया की रुचि के अनुसार ही चलते थे। उनके रास्ते में आने वाली बाधाओं को दूर ही करते गये। उनकी जबरदस्ती परिवार बसाने के लिये विवाह भी नहीं किया। जैसा लोहिया कहते गये वैसा ही वे करते गये।

कलकत्ते में आने पर लोहिया का बहुत ही सम्मान किया गया। उनके सम्मान में अनेक सभाओं का आयोजन किया गया। इन सभाओं में भी लोहिया

जनता को मनोवल ऊँचा रखने स्वतन्त्रता के लिये कटिबद्ध हो कर आन्दोलन चलाने के लिये ही कहते रहे।

मिरज़ापुर में भी ये जब मई १९४६ में अपनी ताई से मिलने गये तो, वहाँ की सभाओं में भी यह सन्देश जनता को दिया। जेल से छूटने के बाद उनका स्वास्थ्य लाहौर किले कीं यातनाओं से ख़राब हो गया था। उन्हें दिल की बीमारी हो गई थी। डाक्टरों ने उन्हें राजनीति से हट कर पूर्ण विश्राम की सलाह दी।

इसी बीच उनके एक प्रिय मित्र गोवा निवासी जूलियो मैंनेजिस ने लोहिया को आराम करने के लिये गोवा बुलाया। लोहिया गोवा आये। वे भारत के उस भाग पर आये जो करीब पाँच सौ वर्षों से पुर्तगाली शासन के अधीन था। और वह भी ऐसा शासन था जहाँ पर आम जनता का मूल अधिकार छिना हुआ था। खास कर वाणी और लेखन का। लोहिया को उस समय और आश्चर्य हुआ जबकि वहाँ के लोगों को शादी के कार्ड भी सरकार को दिखा कर छापने की स्वीकृति लेनी पड़ती थी। अत्याचार, अन्याय के प्रति बचपन से संघर्ष करने वाले लोहिया ने फ़ौरन ही इस सरकार को उखाड़ फेंकने का निश्चय किया।

लोहिया के गोवा आते ही समाज-सेवी लोगों ने उनसे सम्पर्क बनाया। गोवा की अपार भीड़ उन्हें देखने के लिये आती थी क्योंकि इस समय लोहिया सन् ४२ के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के नायक माने जाने लगे थे।

करीब दो महीने जेल से छटे हुए बीते होंगे कि लोहिया फिर संघर्ष में लग गए। गोवा के ही श्रीं पुरुषोत्तम काकोड़कर कुछ नौजवानों के साथ लोहिया से मिले। लोहिया ने फ़ौरन ही पंजिम में एक आम सभा बुलाने को कहा। १५ जून को सभा हुई। इससे पुर्तगाली सरकार घबड़ाई। मड़गाँव के दामोदर विद्याभवन में १७ जून को आन्दोलन को अन्तिम रूप देने के लिये एक बैठक हुई। और १८ जून से ही आन्दोलन आरम्भ करने का निश्चय हुआ।

१८ जून को मड़गाँव में अपार भीड़ इकट्ठी हो गई। सरकार बिल्कुल ही घबड़ाई। सारी सैनिक-तैयारी पुरी करा ली थी। और सभा को सफल न होने देने का फ़ैसला किया। ज्यों ही लोहिया और उनके मित्र डॉ० मैंनेजिस सभा स्थल पर पहुँचे कि एक एडमिनिस्ट्रेटर मिराण्डा गाड़ी के पास दौड़ा और उन्हें तत्काल ही वापस लौट जाने को कहा। उधर जनता नारे लगा रही थी— लोहिया की जय, महात्मा गाँधी की जय आदि। मिराण्डा घबड़ाया वह फ़ौरन ही रिवाल्वर लिये हुये लोहिया की ओर दौड़ा। लोग चकित थे। पर लोहिया

ने उसको खामोश रहने के लिए कहा और भीड़ की ओर इशारा किया और शान्ति से कहा कि समझदारी से काम लो नहीं तो आज कुछ हो जाने वाला है। यह सभा होने वाली है। इसे कोई रोक नहीं सकता। आज गोवा की जनता की यह सभा १८८ वर्षों बाद होने जा रही है। जहाँ पर विदेशी शासन की क्रूर पद्धति को दफ़नाने के लिये जनता ने आज सिविल नाफ़रमानी सीखी है।

इसी बीच पुलिस कमिश्नर आया और लोहिया मैनेजिस् को गिरफ़्तार कर वहाँ से चल पड़ा। लोहिया तो पहले ही से अपनी गिरफ़्तारी को समझ चुके थे। गौवा की जनता हताश न हो उसका उत्साह उमंग बना रहे इसी ख़्याल से अपने भाषण को पहले ही से छपवा लिया था। और वही वहा पर बाँटा गया।

"...गोवा की जनता का दिल दर्द से भरा है। उनकी आँखें हिन्दुस्तान की ओर लगी हैं। यहाँ की जनता को गोवा सरकार पर गुस्सा आता है पर उसे व्यक्त करने का ढंग वे नहीं जानते। ...यहाँ की पुर्तगाली सत्ता की चिन्ता मुझे नहीं है। क्योंकि पुर्तगालों के बड़े भाई अंग्रेज़ की सत्ता ख़तम होने के बाद पुर्तगाली सत्ता भी अवश्य नष्ट होगी।...गोमान्तकीय राष्ट्रीय जीवन के लिये नागरिक स्वतंत्रता का अपहरण करने वाले बदनाम काले कानूनों को हटाया जाना पहला कदम होगा।...यदि गोमान्तकीय मेरे पास न आते तो भी मैं ख़ामोश न बैठा रहता। गोवा हिन्दुस्तान का हिस्सा है और मैं हिन्दुस्तानी हूँ।......प्रत्येक हिन्दुस्तानी को गोमान्तकीयों की सहायता करनी चाहिए।"[1]

गोवा की जनता अब साहसी, उत्साही हो रही थी। उनके मन से पुर्तगाली सरकार का डर भी समाप्त हो गया था। इसीलिये अपार भीड़ ने थाने को घेर लिया, जहाँ पर लोहिया को ले जांया गया था। बाद में पुलिस अफ़सर ने लोहिया को ही जनता को वापिस जाने को कहने के लिये कहा। क्योंकि भीड़ पुलिस के डर से जाने वाली थी नहीं।

पंजिस म्युनिसिपल-भवन के पास के चौंक का गोवा की जनता ने 'लोहिया चौंक' नाम रख दिया और रोज-रोज़ वहीं सभाएँ होने लगीं।

पंजिम जेल में एक बहुत ही गन्दे कमरे में लोहिया और मैजिनिस् को रखा गया।

१९ जून को दोपहर में एकाएक दोनों को रिहा करने के लिये सरकार ने फ़रमान निकाला। फिर जनता की भीड़ स्वागत के लिये उमड़ पड़ी। नियन्त्रण

---

१. लोहिया, ओ॰ श॰, पृ॰ १६६।

के लिये उन पर लाठी बरसाई गई। फिर भी लोग डटे रहे। इस सारे वातावरण के कारण लोहिया का गौवा में रहना ही उचित समझा गया। सरकार ने उन्हें गोवा सीमा के वाहर ले जा कर छोड़ दिया। पर वहाँ की जनता ने २१ जून को फिर लोहिया चौंक में अपना भण्डा फहरा कर विशाल सभा की। सरकार झुकी और उसने फ़रमान भी निकाला कि अब ग्राम सभा के लिये सरकारी आदेश की ज़रूरत नहीं। इस प्रकार गोवा की जनता में लोहिया के नेतृत्व में १८८ वर्ष बाद अपनी पहली विजय प्राप्त की थी।

इधर भारत में भी लोहिया के भाषण को अखबार ने छापा। देश में खलबली मची। उधर नेहरु जी काश्मीर में ठीक इस समय गरिफ़्तार हुये थे। अब अखबार काश्मीर समस्या पर ही ज़्यादा ध्यान आकृष्ट करने लगे।

पर इधर गान्धी जी ने लोहिया की पुण्य कृति पर अपना समर्थन दिया और २६ जून के 'हरिजन' में उन्होंने लिखा "अखबारों से पता चलता है कि डॉ० लोहिया गोमान्तकियों के निमन्त्रण पर गोवा गये थे और उन पर भाषण बन्दी का हुकुम लगाया गया था। डॉ० लोहिया के कथनानुसार १८८ वर्षों से गोवा की जनता सभा और संगठन संबंधी हकों से वंचित है। लोहिया ने स्वभावतः हुकुम तोड़ा। अपनी कृति द्वारा उन्होंने नागरिक स्वतन्त्रता की और खासकर गोमांतकियों की सेवा की है। अंग्रेज़ों की कृपा से गोवा उपनिवेश की हस्ती अब तक बनी हुई है। लेकिन आज़ाद हिन्दुस्तान में स्वतन्त्र मुल्क के कानून के मुताबिक गोवा अलग नहीं रह सकता। बन्दूक की एक भी गोली के बिना गोवा की जनता आज़ाद मुल्क के हक मांग का प्राप्त भी कर सकती है। प्रस्थापित पुर्तगीज सरकार ज़्यादा समय तक गोवा की जनता को उसकी इच्छा के विरुद्ध अलग और ग़ुलाम रखने के लिये ब्रिटिश शस्त्रों पर निर्भर नहीं रह सकेगी। मैं गोवा की पुर्तगीज़ सरकार को सलाह देता हूँ कि समय पहचान कर और पुर्तगीज़ वा ब्रिटिश सरकारों के बीच हुये समझौते के अनुसार अपने नागरिकों के साथ दुर्व्यवहार न करके सम्मान-पूर्ण बर्ताव करें।" और आगे गाँधी जी ने गोवा की जनता को अपनी सलाह यों दी। "गोवा के नार्गरिकों को मैं कह सकता हूँ कि उन्हें पुर्तगीज सरकार का डर छोड़ना चाहिये जैसे भारतीय जनता ने शक्तिशाली अंग्रेज़ों का छोड़ा है। और नागरिक स्वतन्त्रता का बुनियादी हक स्थापित करना चाहिए। गोवा के नागरिकों में जो धर्म भेद है वह सर्वसामान्य जीवन में अड़ंगा नहीं बनना चाहिये। धर्म निज़ी जीवन के लिए है। धार्मिक गुटों में झगड़े का विषय यह कभी नही बनना चाहिये।"

इधर लोहिया बम्बई में आ गये थे। और यहाँ आने पर भी गोवा के बारे में ही ज़्यादा चर्चा करते। इसी ख्याल से उन्हें बम्बई में एक १५ हज़ार रुपये की थैली भी भेंट की गई थी। ताकि वे गोवा के बारे में ज़्यादा काम करें। ३० जून को चौपाटी की सभा में भी लोहिया ने गोवा के ऊपर ही अपना भाषण दिया।

ठीक इसी समय बम्बई में ६ जुलाई को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की सभा हुई। इस सभा में पं० जवाहर लाल नेहरू लोहिया और जयप्रकाश से मिले। नेहरू ने लोहिया को कांग्रेस का 'जैनरल सैक्रेटरी' बनाने का आग्रह किया। लोहिया ने कहा कि अखबारों में तो जयप्रकाश का नाम आता रहा। नेहरू ने कहा कि मेरी और अन्य लोगों की भी यह राय है कि आप ही बनें। तब लोहिया ने ३ शर्त रखीं—(१) कांग्रेस का अध्यक्ष मन्त्रि-मंडल में तथा प्रधान मन्त्री नहीं होना चाहिये। (२) कांग्रेस कार्य समिति में सूबे या केन्द्र का कोई मन्त्री नहीं रहना चाहिये। (३) कांग्रेस मन्त्रि मण्डल और काँग्रेस कार्य समिति से रिश्ते अलग वा स्वतन्त्र रहने चाहिएं तथा कार्य समिति को आवश्यकता होने पर मन्त्रि-मण्डल की आलोचना करने की आज़ादी भी रहनी चाहिये। जवाब में नेहरू ने कहा 'खुद न जाने से काम नहीं हो सकता।"

जवाब में लोहिया बोले, "आपको कांग्रेस अध्यक्ष या प्रधानमन्त्री, इनमें से एक ही पद को चुनना चाहिए।" नेहरू आगे राज़ी नहीं हुए। बातें यहीं समाप्त हो गईं।

इधर १० जुलाई को नेहरु ने गोवा के सम्बन्ध में कहा "छोटी छोटी लड़ाइयों की तरफ़ ध्यान देने की हमें फ़ुरसत नहीं है। भारत के खूबसूरत चेहरे पर गोवा एक छोटा सा फोड़ा है। भारत के आज़ाद होने के बाद उसे सिर्फ़ हाथ की अँगुली से थामने में देर नहीं लगेगी। गोवा की हुकूमत के खिलाफ़ अभी आंदोलन की ज़रूरत नहीं महसूस होती। ब्रिटिश ताकत मिटाने से पुर्तगीज़ ताक़त अपने आप मिट जायेगी।......

इस प्रकार से नेहरू गोवा आन्दोलन को कमज़ोर करने की कोशिश करते रहे। पर ठीक १२ जुलाई को लोहिया ने इसके विरोध में बयान दिया। क्यों कि लोहिया को यह विश्वास था कि जब गाँधी जी का हमें पूर्ण समर्थन प्राप्त है तो इस आन्दोलन को कोई भी कमज़ोर नहीं बना सकता "गोवा भले ही भारत के चेहरे पर फोड़ा हो सकता है, लेकिन काश्मीर के दूसरे फोड़े की अपेक्षा पहले फोड़े ने कम ही भारत के चेहरे को बदसूरत बनाया है। भारत के अन्य किसी भी हिस्से से गोमांतकी का सब ज़्यादा बन्धन में बँधा हुआ है।

गोवा के भावनाशील लोग ज़ुल्मी कानून के ख़िलाफ़ बहादुरी से खड़े हो गये हैं। ग्रौर भारतीय जनता की हमदर्दी उनकी ग्रोर दोड़ रही है। हम लोगों को गान्धी का समर्थन मिला है इस लिए ग्रन्य नेताग्रों की ग्रोर देखना फ़िज़ूल होगा।"

राजनैतिक ग्रान्दोलन के ग्रनुभवी लोहिया समझ चुके थे कि गोवा का ग्रान्दोलन इस समय सफल हो सकता है। क्योंकि जनभावना गोवा सरकार के प्रति विषाक्त हो गई थी। जनता किसी भी तरह की लड़ाई बरकरार रखने को तैयार थी। पर श्री नेहरु का वहाँ पर नेतृत्व न होने के कारण इस ग्रान्दोलन को स्थगित करने की बातें करते ग्रौर काश्मीर ग्रान्दोलन को ही महत्त्व देते रहे। हालांकि जनमानस गोवा जैसा नहीं था। क्योंकि काश्मीर ग्रान्दोलन में उनका नेतृत्व था। नेहरू के इस कार्य से गोमान्तवासी काफ़ी निराश हुए। पर लोहिया ने उनको ग्राशा दी थी। ग्रान्दोलन की रूपरेखा प्रस्तुत की ग्रौर इसी बीच गाँधी के सन्देश ने गोमान्तवासियों के मन में फिर एक बार निराशा को ग्राशा में बदल दिया।

"डॉ० लोहिया की राजनीति शायद मुझसे भिन्न हो सकती है लेकिन उन्होंने गोवा में जाकर उधर की कलंकमय जगह पर ग्रपनी ग्रँगुली रखी है, ग्रौर इसी कारण मैं उनकी तारीफ़ करता हूँ। गोवा के नागरिक शेष हिन्दुस्तान के ग्राज़ाद होने तक प्रतीक्षा कर सकते हैं। लेकिन कोई भी व्यक्ति या गुट स्वाभिमानशून्य हुए बिना नागरिक स्वातन्त्र्य के ग्रभाव में नहीं रह सकता। उन्होंने जो मशाल प्रज्ज्वलित की है उसे गोवा के नागरिक ग्रगर बुझ जाने देंगे तो उनके लिथे बहुत बड़ा खतरा होगा। ग्राप ग्रौर गोवा के नागरिक दोनों को ही डॉ० लोहिया को बधाई देनी चाहिए कि उन्होंने यह मशाल जलाई। इस दृष्टि से ग्रापका परकीय ऐसा उनका वर्णन यदि इतना खेद-पूर्ण न होना तो हास्यास्पद होता। वास्तव में पुर्तगाल से ग्राये हुए पुर्तगीज़ पराए हैं; चाहे वे लोकहितैषी के नाते ग्राए हों या दुनिया की तथाकथित कमज़ोर जातियों के शासक बन कर। वर्ण-भेदों को समाप्त करने का ज़िक्र ग्रापने किया है। मैंने जो हालत देखी है वह यह है कि जाति-भेदों का ख़ात्मा तो नहीं हुग्रा है बल्कि जाति-प्रथा से ज़्यादा ख़तरनाक पुर्तगीज शासकों की एक नई जाति हो गई है।"

"इस लिए मैं उम्मीद करता हूँ कि ग्राप ग्रपने लोकहित सम्बन्धी नागरिक स्वातन्त्र्य ग्रौर जाति सम्बन्धी विचारों के बारे में फिर सोचेंगे ग्रौर ग्रफ्रीकी पुलिस को हटाकर खुद को नागरिक स्वतंत्र्य के पूरे हिमायती घोषित करेंगे।

मुमकिन हो तो गोवा के नागरिकों को अपनी सरकार बनाने की सहूलियते दें। और इस कार्य में उनकी और आपकी मदद करने के लिये अन्य अनुभवी भारतीयों को भी निमंत्रित करें। आपका मो० क० गाँधी।"

लोहिया पार्टी के संगठन और उसे और चुस्त बनाने में लगे रहे। और गोवा के बारे में गान्धी ज़ी उनके समर्थन में लगे। पुर्तगीज़ों से गोवा की जनता की मागों के समर्थन में वरावर पत्र-व्यवहार भी करते रहे। गांधी जी के इस समर्थन से सचमुच लोहिया का उत्साह और अधिक बढ़ गया था। जिस समय लोहिया को प्रथम बार गोवा के सरकारी अफ़सर ने गोवा सीमा से बाहिर ला कर छोड़ा उस समय लोहिया ने कहा था—अगर गोवावासियों की मांगों पर ध्यान नहीं दिया गया और उन्हें मान्यता नहीं दे दी गई तो मैं फिर ३ महिने बाद गोवा में प्रवेश करूँगा। अपने इस वादे को वे पार्टी कार्य में व्यस्त होने के बावजूद भी नहीं भूले और इसी ख्याल से उन्होंने बम्बई की ओर प्रस्थान किये। बम्बई जाने पर २१ सितम्बर को लोहिया गाँधी जी से मिले और अपने कार्य-क्रमों के ऊपर प्रकाश डाला। बम्बई में गोमांतकीयों की सभाएँ करते रहे और जनमत को तैयार किया। इसके बाद वे बेलगाँव पहुँचे। इधर गोवा सरकार का रुख बहुत ही कड़ा हो गया था। वह कुछ भी कर बैठने के लिये सशस्त्र तैयार थी। पर लोहिया भी कब डरने वाले थे। वे तो अन्याय और अत्याचार का विरोध करना बचपन से ही सीखे थे। अपने वादों को ज़रूर निभायेंगे। गोवा में प्रवेश अब उनके जीवन का एक आवश्यक भाग बन गया था। और फिर मड़गाँम की ओर चल पड़े।

इधर गोवा सरकार की होस उड़ गई। क्योंकि ४२ का क्रान्तिकारी फिर गोवा में प्रवेश कर रहा है। सरकार घबड़ाई और तुरन्त ही लोहिया को गिरफ्तार करने का आदेश दिया। फलस्वरूप लोहिया को कोलेम टीसन पर ही गिरफ्तार कर लिया गया। और उनको इस बार जेल में विशेष रूप से उन्हें सताने का कार्य-क्रम चलाया गया। उन्हें राजनैतिक कैदियों को दी जाने वाली सभी सुविधाओं से वञ्चित रखा गया।

इधर गान्धी जी लोहिया की गिरफ्तारी का समाचार सुनते ही बौखला उठे। और उन्होंने पहले नेहरू को लिखा कि वे लोहिया की तत्काल रिहाई के लिये सरकारी पैमाने पर प्रयत्न करें। पर नेहरु ने कुछ भी कर सकने की अपनी असमर्थता दिखाई।[1] तब गान्धी ने स्वयं इस मामले में हस्तक्षेप किया

---

१. ओ० श० लोहिया पृ० १७३।

और कहा कि लोहिया कोई मामूली आदमी नहीं है। गोवा सरकार उन्हें तत्काल ही रिहा करे। इसके लिये उन्होंने वायसराय को हस्तक्षेप करने को कहा। इसके बाद लोहिया को गोवा सरकार ने जेल से लाकर २९ सितम्बर की आधी रात से ८ अक्टूबर तक दस दिन में जेल में रखने के बाद उन्हें अनमोड़ के रास्ते भारतीय सीमा पर लाकर छोड़ा।

उधर लोहिया की गरिफ़्तारी का समाचार मिलते ही गोवावासी फिर एक बार क्रान्ति की ओर अग्रसर हुए। हड़तालों का होना प्रारम्भ हो गया। अपने झण्डे लेकर लोग फिर एक बार सड़कों पर निकल पढ़े।

इस बार गोवा की सरकार ने लोहिया के लिये ५ वर्षों तक गोवा में प्रवेश न करने की घोषणा कर दी।

बेलगाँव आने पर लोहिया ने गोवा के प्रधान न्यायपूर्ति को निम्न पत्र लिखा—"...मैंने गोवा का एक भी कानून नहीं तोड़ा।...गोवा सरकार को मुझसे माफ़ी माँगनी चाहिए और गैर-कानूनी जेल में रखने के कारण हर्जाना देना चाहिए।...२८ सितम्बर से ८ अक्टूबर तक मुझे ऐसी कोठरी में रखा गया जहाँ का वायु संचालन केवल जीवित रहने तक ही सीमित था। बाद में मुझे अलग कोठरी में यद्यपि ज़रा अच्छी हालत में रखा गया लेकिन पत्र-व्यवहार और मुलाकात की सुविधा नहीं दी। यह भी मेरी सज़ा के गैर-कानूनी-रूप को बढ़ाने वाली चीज़ है। इसके लिये सरकार को मुझसे माफ़ी माँगनी और हर्जाना देना चाहिए।

गांधी जी ने इसे 'हरिजन' में छापा और अपनी इस पर टिप्पणी दी—'यह कोई मामूली ख़त नहीं है। और डा० लोहिया का हर्जाना माँगने का तर्क भी हँसी उड़ाने लायक चीज़ नहीं है। यदि डा० लोहिया के पीछे ताकत होती तो गोवा के मालिक तुरन्त माफ़ी माँगते और हर्जाना भी देते। यह अनोखी चीज नहीं है। बड़ी ताकत वाले देश साधारण व्यक्तियों के अपमान या नुकसान होने पर भी हर्जाना माँगते और उसको हासिल भी करते हैं। डा० लोहिया मामूली आदमी नहीं हैं और भारत में राष्ट्रीय सरकार है। मुझे विश्वास है कि अन्य किसी की तरह भारत सरकार भी अपने सम्मान के प्रति जागरुक है। यदि यह अपना विरोध प्रकट करके गोवा सरकार से अपना आप सुधारने को कहेगी तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा। कुछ भी हो जनमत की शक्ति सरकार और पीड़ा-प्राप्त डा० राममनोहर लोहिया के पीछे होनी चाहिये। उनके साथ जो अशिष्ट व्यवहार किया गया है वह गोमान्तकीयों और उनके द्वारा सारे भारत के प्रति किया गया है।"

इसके तत्काल ही बाद गांधी ने लोहिया को दिल्ली बुलवाया। पर इसी बीच नोग्राखाली में संकट की स्थिति पैदा हो गई थी। वहाँ लोग एक दूसरे के सम्प्रदाय को लेकर गला काट रहे थे। गान्धी फ़ौरन ही नोग्राखाली की ओर चल पड़े। लोहिया दिल्ली आये। गान्धी से मुलाकात नहीं हो सकी। फिर वापिस बेलगांव आगये। और गोवा के मुक्ति-कर्म में अपने को लगा दिया।

इसी बीच गान्धी का दूसरा तार कलकत्ते से लोहिया को आया। लोहिया कलकत्ते पहुँचे। और यहीं पर गाँधी ने लोहिया को नोआखाली में भेद-भाव मिटाने के लिये हिन्दू-मुसलिम भाई-भाई हैं स्नेह पैदा करने के लिये कार्य हेतु रोक लिया। उधर भारत सरकार का भी रुख गोवा के बारे में अस्पष्ट था। भारत सरकार की यह शिकायत गान्धी से थी कि लोहिया के गोवा में रहने से सरकार के सामने गोवा समस्या को हल करने में अड़चनें पैदा हो रही हैं[1]। फिर भी आन्दोलन कमज़ोर न हो इसके लिये लोहिया ने गोवावासियों को अपने सन्देश में यह कार्य-क्रम दिया "शाँतिपूर्ण ढंग से आन्दोलन जारी रखिए। जेल में जाइए। लाठी खाइए। गोली खाइए। मोर्चा जलूस निकालिए और यूरोपियों का सफ़ेद पैर एशिया की भूमि से निकालिए।" लोहिया का यह सन्देश गोवा के स्वतन्त्रता के इतिहास में भुलाया नहीं जा सकता।

समय मिलते ही १६४६ जनवरी के प्रारम्भ में लोहिया फिर बम्बई आए, और जिन्ना हाल में गोमान्तकियों की एक बड़ी सभा का आयोजन किया। यहाँ पर गोवा के लिये धन-संग्रह की अपील की गई। लोगों ने लोहिया को पर्याप्त धन दिया। औरतों ने अपने गहने दिए। लेकिन इस आन्दोलन में अब कुछ ग़लत लोगों का हाथ आगया था। अब यह आन्दोलन ६ सौ लोगों के जेल जाने के बावजूद भी ढ़ीला पड़ने लगा था। १० फ़रवरी को पं० नेहरू ने दिल्ली से एक बयान देकर इस आन्दोलन को बुझा ही दिया। नेहरू ने कहा—"गोवा, दामन और दिव की बहुसंख्यक जनता की हिंद राज्य संघ में शामिल होने की इच्छा है या नहीं यह सरकार निःसंदिग्ध रूप में नहीं कह सकती।"

अतः फ़ौरन ही गोवा सरकार ने नेहरू के इस बयान से लाभ उठा कर जनता में यह कहना प्रारम्भ कर दिया कि भारत की सरकार स्वयं गोवा को अलग रखना चाहती है। अतः नेहरू ने गोवा की जनता का साथ नहीं दिया,

---

१. ओंकार शरद लोहिया पृ० १७५।

नहीं तो यह आन्दोलन सफल हुआ होता और गोवा भी उसी समय स्वतन्त्र भारत का भाग होता ।

लेकिन फिर भी लोहिया ने १९४६ जून से जो आन्दोलन छेड़ा था, प्रथम बार गोवावासियों को क्रान्ति का पाठ पढ़ाया था, उसे इतिहास में भुलाया नहीं जा सकता । इसलिये आज भी गोवा के लोक-गीतों में लोहिया का नाम बार बार सुनने को मिलता हैं । औरतें गाती हैं—'पहिली माझी ओवी, पहिले माझ फूल, भक्ति ने अर्पित लोहिया ना ।' कवि बोरकर के शब्दों में 'धन्य लोहिया, धन्य भूमि यह, धन्य उसके पुत्र ।'[1]

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद बहुत दिनों तक पं० नेहरू गोवा की समस्या को शान्ति और अहिंसा के रास्ते पर हल करने को कहते रहे । उनका विचार था, कयामत तक हम इस समस्या को शान्ति और अहिंसा से हल करेंगे । और बाद में पं० नेहरू ने ठीक सन् १९६२ के आम चुनाव के कुछ दिन पहले फ़ौज को बन्दूक, गन, मशीनगन आदि से लैस कर गोवा में प्रवेश कराया । और अपने अधिकार में लिया ।

---

१ ओंकार शरद लोहिया पृ० १७६ ।

भारतीय राजनीति की रूपरेखा

काँग्रेस अपने प्रारम्भिक काल में अंग्रेज़ों की सत्ता को मज़बूत बनाये रखने के लिये ही देश में बनाई गयी थी, ऐसा प्रतीत होता है। क्योंकि काँग्रेस के सम्मेलनों में ब्रिटिश शासन को भारत में ईश्वरीय देन है, माना जाता था। श्री फ़ीरोजशाह मेहता आदि की अध्यक्षता में हो रहे सम्मेलनों में सर्व प्रथम यह ईश्वर से प्रार्थना की जाती थी कि हे ईश्वर इस देश में ब्रिटिश राज्य को हमेशा कायम रखें। पर श्री बालगंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय आदि क्रान्ति के अग्रदूतों के आगम होते ही काँग्रेस के एक वर्ग का रूप बदला। बालगंगाधर तिलक ने यह नारा दे दिया "स्वत्रन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, हम इसे लेकर रहेंगे। हमारा मुख्य मक्सद है इस देश में ब्रिटिश राज्य को समाप्त करना। काँग्रेस में हंगामा मचा। फलस्वरूप काँग्रेस दो वर्गों में बँट गई जिसे हम गरमदल और नरमदल के नाम से जानते हैं। नरमदल अंग्रेज़ों का पिट्ठू था। गरमदल देश को गरमाना चाहता था। इसलिये गरमदल के नेताओं पर ब्रिटिश साम्राज्य ने घोर अत्याचार करना आरम्भ कर दिया। लाहौर में लाला लाजपतराय पर घोर लाठी वर्षा की गई जिसके कारण कुछ दिनों बाद उनकी मृत्यु हो गई। पर क्या क्रान्ति को लाठी, गोली से दबाया जा सकता था? वे तो देश के लिये पैग़म्बर थे जिन्हों ने देश की ख़ातिर अपने को कुर्बान किया। यहीं से देश का वातावरण बदलना आरम्भ हो गया था और गाँधी के आते और जान आ गई। पर बालगंगाधर तिलक की क्राँति-कारिता के कारण काँग्रेस पार्टी का मुख्य उद्देश्य था—देश को ब्रिटिश शासन से मुक्त कराना और अपने विकास के प्रारम्भिक वर्षों में देश के शासन में शिक्षित वर्ग के कुछ भारतीय प्रतिनिधियों को शामिल करना। पर बाद के काँग्रेस में कुछ उत्साही युवकों का एक वर्ग था जो कि काँग्रेस की इस नीति से सन्तुष्ट नहीं था। ये नवयुवक समाजवादी विचारों से प्रेरित हो कर असहयोग आन्दोलन में भाग ले रहे थे। इन का दृढ़ विश्वास था कि आन्दोलन द्वारा ब्रिटिश सरकार से शासन शान्तिपूर्वक-छीन कर उसे थोड़े से सुशिक्षित भारत वासियों के हस्तान्तरित करने से वास्तविक स्वतन्त्रता प्राप्ति नहीं होगी। इस देश के विशाल जन-समूह के लिये स्वतन्त्रता उसी समय कुछ महत्त्व और अर्थ रखेगी जब काँग्रेस पार्टी अपने कार्यक्रम में एक

क्राँतिकारी नीति अपनाएगी। ऐसी नीति का एक अंग होगा राजनैतिक स्वतन्त्रता की लड़ाई और उतना ही महत्त्वपूर्ण दूसरा अंग होगा देश में एक ऐसी आर्थिक और सामाजिक क्रान्ति जिस से जनता अनेक समस्याओं से मुक्त होकर वास्तविक स्वतन्त्रता और उत्थान का अनुभव करे। अपने इसी उद्देश्य को लेकर ये उत्साहित नवयुवकों ने अगले दिनों में बिहार, पंजाब, बंगाल, बम्बई और संयुक्त प्रान्त (यू. पी.) और दिल्ली राज्यों में कांग्रेस के अन्दर समाजवादी अंग कायम किये।

इन नवयुवक वर्ग में श्री जयप्रकाश नारायण, अच्युत पटवर्धन, डा० राम मनोहर लोहिया, मीनू मसानी, अशोक मेहता, एन. आर गौर और अनेक विचारक थे, जिन्होंने मिल कर काँग्रेस समाज वादी पार्टी की रूपरेखा तैयार की। इनके अनुसार यह पार्टी काँग्रेस के तत्त्वावधान में रह कर विशेष वामपंथी कार्यक्रम का समर्थन करेगी। इन लोगों ने काँग्रेस में रहना इसलिये ही स्वीकार किया क्योंकि काँग्रेस पार्टी का उद्देश्य था देश को गुलामी की जन्जीर से मुक्ति दिलाना। ये अपने सामाजिक और आर्थिक आदर्शों से प्रेरित होकर अलग दल नहीं बना सकते थे क्योंकि ऐसा होने पर अंग्रेजों को ही लाभ होता।

इन्हीं सब आदर्शों को लेकर मई सन् १९३४ में काँग्रेस के इस वामपक्ष का एक सम्मेलन पटना में हुआ। इसके मुख्य अगुआ आचार्य नरेन्द्र देव थे। श्री जयप्रकाश नारायण और डॉ० राममनोहर लोहिया आदि ने इस सम्मेलन को सफल बनाने में अपना अर्थिक सहयोग दिया था। देश के अनेक समाजवादी विचारक यहाँ एकत्रित हुए। दल का कार्य-क्रम, नीति और उद्देश्य के आदर्शों पर विचार हुआ। यहाँ पर प्रथम बार सरयू नदी के तीव्र वेग से बहने वाले विचारक एकट्ठे हुये थे। ये थे आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ. राम मनोहर लोहिया (दोनों सरयू का किनारा, फ़ैज़ाबाद) और जयप्रकाश नारायण गंगा सरयू का संगम (सिता व दियारा आधुनिक जयप्रकाश नगर यू० पी० (बिहार सीमा जि० बलिया)।

इस सम्मेलन में प्रथम बार आचार्य नरेन्द्र देव और डॉ० राम मनोहर लोहिया का एक दूसरे से परिचय हुआ था। इस परिचय से आचार्य नरेन्द्रदेव बहुत ही प्रभावित हुये। वे कहते हैं। "मुझे यह कहने में प्रसन्नता है कि जब पार्टी का विधान बना तो केवल डा० लोहिया और हम इस पक्ष में थे कि उद्देश्य के अन्तर्गत पूर्ण स्वाधीनता भी होनी चाहिये। अन्त में हम लोगों की विजय हुई।"[1] डॉ० लोहिया का हर विचार एक निश्चित योजना के आधार

१. राष्ट्रीयता और समाजवाद--आचार्य नरेन्द्र पृ० ६८८।

पर था।

दल का कार्य-क्रम, नीति, इस सभा के फ़ैसलों के आधार पर निश्चित हुआ और कुछ समय बाद कांग्रेस समाजवादी दल का निर्माण हुआ। तेरह प्रादेशिक शाखाएँ इसकी सदस्य बनीं। इस वर्ग का प्रमुख उद्देश्य था—स्वतन्त्रता के साथ-साथ समाजवादी समाज की स्थापना करना। यद्यपि पण्डित जवाहर लाल नेहरू इस वर्ग के सदस्य नहीं थे परन्तु उन्हें इस तरुण वर्ग के आदर्शों और प्रयत्नों से पूरी सहानुभूति थी। अपने भाषणों के दौरान वे इनके उद्देश्यों की चर्चा करते।

काँग्रेस समाजवादी दल का नेतृत्व आचार्य नरेन्द्र देव, जयप्रकाश नारायण, लोहिया कर रहे थे। प्रथम दोनों नेता मार्क्स के विचारों से काफ़ी प्रभावित थे। इस लिये वे क्रान्तिकारी तरीक़ों, वर्ग-संघर्ष आदि में मार्क्स की नीति के अनुगामी थे। इसीलिए बाद में इनमें और काँग्रेस के वहुसंख्यक वर्ग जो गाँधीवादी था कई प्रश्नों पर काफ़ी मतभेद हो गया जैसे अहिंसा आदि को ले कर।

१६३६ और १६४० के बीच बहुत से कम्यूनिस्ट भी इस दल में सम्मिलित हो गये। क्योंकि और वे कर ही क्या सकते थे। सरकार की तरफ़ से कम्यूनिष्टों पर प्रतिबन्ध लगा था। अतः उन्होंने अपने विचार को फैलाने के लिये सम्मिलित होना ही उचित समझा। पर मिलने पर इन लोगों और कांग्रेस समाजवादी दल के लोगों में काफ़ी मतभेद बढ़ा, क्योंकि कम्यूनिष्ट सारे का सारा नेतृत्व अपने हाथ में ले लेना चाहते थे। पर अन्त में उनको सफ़लता नहीं मिली। वे कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी से निकाल दिये नये। कम्यूनिष्टों की इस प्रकृति से समाजवादी विचारकों को मार्क्सवाद से कुछ निराशा और उनके प्रति प्रेम भी कम होता गया।

इसी बीच कांग्रेस में गान्धी जी और सुभाष चन्द्र बोस में मतभेद हो गया। सुभाषचन्द्र बोस ने कांग्रेस की अध्यक्षता से त्यागपत्र देकर फ़ावर्ड ब्लाक का निर्माण दिया। कांग्रेस समाजवादी दल और कम्यूनिस्ट दल उनके साथ हो गए और स्वतन्त्रता संग्राम में अपना अधिक सहयोग लगा दिया। द्वितीय महायुद्ध की अवधि के दौरान उस पर प्रतिरोध लगा दिए जाने के कारण उसके अधिकतर नेता जेल में डाल दिये गये। काँग्रेस के अधिकतर नेता इन दिनों जेलों के अन्दर थे। इस समय दल का सारा नेतृत्व सोशलिस्ट दल के हाथ में था। इसीलिये इस दल ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध कान्तिकारी उपायों का प्रयोग किया। कांग्रेस की अहिंसा-नीति का पूर्ण रूप से पालन नहीं किया, क्योंकि ब्रिटिश सरकार ने ऐसा करने को बाध्य कर दिया था

जिसका प्रभाव कुछ नवयुवजनों पर पड़ा। इसी लिये बाद में जाकर इन दोनों दलों में इसी बात को ले कर मतभेद बढ़ा। इसी समय कांग्रेस सोशलिस्ट वर्ग ने यह फ़ैसला कर लिया कि देश को राजनैतिक स्वतन्त्रता मिलने के बाद के कांग्रेस पार्टी से संबंध तोड़ कर एक अलग पार्टी का निर्माण करेंगे।

इन थोड़े दिनों के जीवन में ही इस दल के नेताओं के विचार में राजनैतिक सूझ और प्रौढ़ता आ गई थी। आरम्भ में इन लोगों को पश्चिम के विचारों से प्रेरणा और उत्साह मिला पर धीरे-धीरे उसको भारतीय समाजवादी परम्पराओं में ढालने लगे। इनके इन विचारों पर गान्धी जी का बहुत ही प्रभाव पड़ा। अब उन्होंने मार्क्सवादी दृष्टिकोण से हट कर गान्धी विचार शैली को अपनाना प्रारम्भ कर दिया था।

१९४६ में इस पार्टी की एक महत्त्व-पूर्ण सभा कानपुर में हुई। इसी सभा के फ़ैसले के अनुसार पार्टी अपने नाम से कांग्रेस शब्द हटा कर सोशलिस्ट पार्टी बन गयी। अब यह आवश्यक नहीं रह गया कि पार्टी के सदस्य होने के लिये कांग्रेस का भी सदस्य होना आवश्यक है। इसका मुख्य उद्देश्य एक जनतंत्रीय समाजवादी समाज की रचना करना था। इस दल के लिये यह आवश्यक समझा गया कि "साम्राज्यवाद, जाति-भेद, उपनिवेशवाद तथा अन्य प्रकार के राष्ट्रीय अत्याचार और अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक असमानताएँ मिटा कर संसार में जनतंत्रीय समाजवाद स्थापित किया जाए।" पर अभी तक इस दल ने एक स्वतन्त्र रूप नहीं धारण किया था।

सन् १९४८ में गान्धी जी की मृत्यु के तत्काल बाद कांग्रेस के सोशलिष्ट दल की एक सभा नासिक में हुई। यहाँ पर इस दल ने कांग्रेस से बिल्कुल अलग हो जाने का फ़ैसला किया। इस समय अन्य छोटी-छोटी समाजवादी पार्टियाँ इस दल में आकर मिल गईं जैसे भारतीय बालशिविक लेनिनिस्ट पार्टी, क्रांतिकारी सोशलिस्ट पार्टी और उत्तरप्रदेश का एक छोटा सोशलिस्ट वर्ग भी मुख्य था। १९५२ के चुनाव में इस दल ने प्रथम बार स्वतन्त्र रूप से भाग लिया और देश में १.१ करोड़ वोट तथा कुल वोटों का ११% भाग इसे मिला।

किसान मजदूर-प्रजा पार्टी :—आचार्य जे. बी. कृपलानी ने अपने नेतृत्व में कांग्रेस से अलग होकर किसान-मजदूर प्रजा पार्टी की स्थापना की थी। यह जनतंत्रीय समाजवाद की समर्थक थी और किसानों और औद्योगिकों, श्रमिकों के हित को लेकर आगे बढ़ रही थी। १९५२ के चुनाव में इस दल को ८० लाख वोट प्राप्त हुए थे।

एकीकरण:—आचार्य कृपलानी और किदवई ने भी कांग्रेस की नीतियों से असन्तुष्ट होकर अपना सम्बन्ध कांग्रेस से तोड़ दिया। इन लोगों ने एक नये विचार से 'किसान—मज़दूर-प्रजा-पार्टी' की स्थापना की। यह पार्टी जनतन्त्रीय समाजवाद समर्थक और किसानों और औद्योगिक श्रमिकों के हित को अपना मुख्य उद्देश्य समझती थी। इस पार्टी ने भी सन् १९५२ के प्रथम चुनाव में भाग लिया और उसे ८० लाख वोट प्राप्त हुए।

सन् १९५२ के प्रथम चुनाव में इन पार्टियों को कोई विशेष सफलता नहीं मिली। पर काँग्रेस का भी प्रभाव घटने लगा था। और ऐसा देश में आभास होने लगा कि कांग्रेस दिन-प्रतिदिन कमज़ोर ही होती जायेगी। लेकिन अब भी कांग्रेस के विरोध में भारत में एक सबल और सुसंगठित पार्टी का अभाव था जो कि कांग्रेस का स्थान ले सके।

लोकतन्त्र में एक मज़बूत विरोधी दल का होना अति ही आवश्यक है। बिना इसके लोकतन्त्र की पूर्ण सफलता की आशा नहीं की जा सकती। इस समय भी देश में कई पार्टियां थीं जो कि राजनैतिक शान्ति को छिन्न भिन्न करती ही थीं। इन्हीं बातों को लेकर विरोधी दल के नेताओं में एक नयी सूझ सूझी। वह था समान-विचार की पार्टियों का एकीकरण। इन दिनों किसान-मज़दूर-प्रजा-पार्टी और सोशलिस्ट पार्टी के आदर्शों में काफ़ी समानता थी। दोनों दल के सदस्यों में एक सफल और सुसंगठित पार्टी के निर्माण की बातचीत आरम्भ हो गई। ताकि कांग्रेस का जम कर विरोध किया जा सके। और देश में समाजवादी शक्तियों का एक अच्छा संगठन बनाया जा सके। सन् १९५२ के आम चुनाव के बाद दोनों पार्टियाँ मिल गईं और उनका एकीकरण हो गया। पार्टी का नाम रखा गया प्रजा-सोशलिस्ट-पार्टी।

इस पार्टी का महत्त्व दिन प्रति दिन बढ़ने लगा। इसकी नीति तथा उद्देश्य का प्रचार चारों तरफ़ होने लगा। इन दोनों पार्टियों के एकीकरण पर आचार्य कृपलानी ने अपने विचार को प्रकट करते हुये कहा था—"दोनों पार्टियाँ भारत में जातिहीन और वर्गहीन समाज कायम करना चाहती हैं—ऐसा समाज जिसमें राजनैतिक सामाजिक और आर्थिक शोषण न हो। समाजवादी इसे समाजवादी समाज कहते हैं, हम इसे सर्वोदय समाज कहते हैं।"

कुछ महत्त्वपूर्ण नीतियाँ—

(१) अर्थ व्यवस्था और शासन-व्यवस्था में विकेन्द्रीयकरण, इसका आशय है कि शासन कार्य और आर्थिक प्रयत्नों में किसी स्थान या क्षेत्र के निवासी अपनी जिम्मेदारियाँ स्वयं निभाएँ। एक गाँव या कुछ गाँवों का एक समूह

ऐसे शासकीय और आर्थिक विकेन्द्रीकरण का केन्द्र होगा।

(२) शक्ति संचालित छोटी मशीनों के आधार पर एक नई टेकनीक बनाई जाये। इससे आर्थिक शक्ति बड़े पैमाने का उद्योग चलाने वालों और सरकारी कर्मचारियों के हाथ से हट कर जन-साधारण के हाथ में जायेगी और कुटीर तथा छोटे पैमाने के उद्योगों की उन्नति होगी।

(३) आधारभूत उद्योगों, विदेशी व्यापार और आर्थिक क्षेत्र की बड़ी इकाइयों का राष्ट्रीयकरण हो।

(४) श्रम-संगठन और श्रमिकों के कल्याण से सम्बन्धित संस्थाओं को विकास की पूर्ण स्वतन्त्रता रहे।

(५) नागरिक स्वतन्त्रताएँ पूर्ण-रूप से बनी रहें।

(६) सादगी और स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग की भावना को प्रोत्साहन दिया जाय।

(७) आर्थिक समानता और सामाजिक गतिशीलता राष्ट्र हित के आधार भूत सिद्धान्तों में गिने जाएँ।

(८) बिदेशी नीति, तटस्थता, निष्पक्षता और बड़े राष्ट्रों के झगड़े से अलग रहने के विचारों पर आधारित हो। इसके साथ-साथ समान विचार वालों से सहयोग करके अन्तर्राष्ट्रीय विषमताएँ कम करने के प्रयत्न होते रहें।

(९) देश की सुरक्षा के लिये न्यूनतम सैनिक शक्ति का प्रबन्ध किया जाय और एक जन-सेना बनाई जाय। आदि

प्रजा सोशलिस्ट पार्टी अपने इन्हीं सब सिद्धान्तों के कारण बहुत ही अधिक जनप्रिय होती जा रही थी। इस पार्टी में मार्क्सवाद, जनतंत्रीय समाज-वाद और गाँधीवाद इन तीन विचार-धाराओं के नेता थे। आचार्य नरेन्द्र देव मार्क्सवादी विचारों के मुख्य समर्थक रहे। वे बराबर कांग्रेस के ढीलेढाले समाजवादी विचारों के विरोधी थे। परन्तु साम्यवाद के भी कट्टर विरोधी थे। जयप्रकाश का राजनैतिक जीवन मार्क्सवादी ही होकर प्रारम्भ हुआ पर धीरे-धीरे वे गांधीवाद की ओर अग्रसर हो रहे थे। लोहिया विशुद्ध जन-तंत्रीय भारतीय समाजवादी विचारों के समर्थक थे। अशोक मेहता का झुकाव प्रारम्भ से ही कांग्रेस की तरफ़ था। उन्होंने अन्त में योजना आयोग के सदस्य बन कांग्रेस की सदस्यता स्वीकार की बाद में कांग्रेस के केन्द्रीय सरकार में मन्त्री भी बन बैठे।

लोहिया का दल से सम्बन्ध विच्छेद :—

प्रजा सोशलिस्ट पार्टी में डा० राम मनोहर लोहिया एक तरुण नेता थे। पार्टी के एक स्तम्भ थे। लोहिया प्रारम्भ से ही सदैव क्रान्तिकारी और शुद्ध समाजवाद का समर्थन करते रहे। वे श्री अशोक मेहता की कांग्रेस-समर्थक-नीति से बहुत ही असन्तुष्ट थे। क्योंकि वे जानते थे कि इन से दल को बहुत ही खतरा होगा और अन्त में यह व्यक्ति दल को चौपट कर देगा, सारहीन बना देगा। लोहिया इस बात को बहुत ही पहले से जान चुके थे कि श्री मेहता एक न एक दिन कांग्रेस में जा बैठेंगे, जो शत प्रतिशत सही हुआ। लोहिया के अनुसार देश में पार्टी को शक्ति प्रदान करने के लिये प्रजा-सोशलिस्ट-पार्टी को 'समान-दूरी की नीति' पर चलना चाहिये। अर्थात् कांग्रेस और कम्यूनिस्ट पार्टी से समान दूरी रखना और अपनी पार्टी का कार्यक्रम पूरा करना। वे प्रारम्भ में काग्रेस पार्टी या कम्यूनिस्ट पार्टी से सहयोग या समझौता करना ठीक नहीं मानते थे। क्योंकि इससे दल को आघात पहुँचता।

भारत में समाजवाद की स्थापना के लिये लोहिया विचारों और राजनैतिक कार्यों में क्रान्तिकारी तरीकों को अपनाना चाहते थे क्योंकि देश की धीमी प्रगति से वे अधीर हो उठे थे।

सन् १९५४ में पी० एस० पी० ने कांग्रेस और मुसलिम-लीग से मिल कर ट्रावनकोर-कोचिन (वर्तमान केरल प्रदेश) में संयुक्त सरकार बनाई। जिसके मुख्यमंत्री श्री पट्टम थानु पिल्लै बने। एक दिन प्रान्त में तमील भाषा भाषी आन्दोलन हुआ। आन्दोलनकारियों ने अपनी मांगों को लेकर एक जुलूस निकाला। इस जुलूस पर सरकार की तरफ़ से गोली चलाई गई। जिससे सात व्यक्तियों की जानें गई। लोहिया इससे तिलमिला उठे। क्योंकि वे प्रारम्भ से ही अहिंसा के बहुत बड़े समर्थक रहे। गान्धी जी के मरते समय उन्होंने कहा था कि "मैं राजनीति में कभी भी हिंसा नहीं करूँगा।" लोहिआ ने इस गोली काण्ड की नैयायिक जांच की माँग की। उनके इस प्रस्ताव को प्रजासोशलिस्ट पार्टी ने नहीं माना, उनके इस सुझाव को अस्वीकार कर दिया। इसी बीच महाराष्ट्र में मधुलिमये को पार्टी के सदस्यता से **निलम्बित** कर दिया गया था। यह भी लोहिया के लिए असह्य था। क्योंकि मधु को पार्टी से **निलम्बित** के तरीके ग़लत थे। महाराष्ट्र में मधु, श्री केशव गोरे आदि लोगों ने अशोक मेहता के **ढूल-मूल** नीति पर प्रहार करना शुरू कर दिया था। जिस पर गलत बहाने बना कर **निलम्बित** किया गया। लोहिया इससे सख़्त नाराज़ हुए।

इस पर लोहिया ने मधुलिमये और अन्य सैकड़ों साथियों के साथ पार्टी

छोड़ दी और एकेला चलो नीति के अनुसार दिसम्बर १९५५ में हैदराबाद में पहला अधिवेशन बुलाया और एक नई पार्टी बनाई गई। जिसका नाम रखा गया—अखिल-भारतीय-सोशलिस्ट पार्टी।

उधर प्रजा सोशलिस्ट पार्टी की स्थिति काफ़ी खराब होती गई। श्री जयप्रकाश नारायण गाँधीवादी विचारों के निकट पहुँच चुके थे। वे सोचने लगे कि जब इंसान के दिल न बदलें ऊपर से चाहे कितनी भी नई बातें और नये ढाँचे समाज पर लाद दिये जाएँ वे सब बेकार ही होंगे। देश में आवश्यक सुधार नहीं हो पाएगा। इधर वे लोहिया के दल से सम्बन्ध विच्छेद कर लेने से भी दुःखी थे। अतः १९५४ में एक मार्मिक भाषण में अपने आप को भूदानी घोषित किया और राजनैतिक जीवन से अलग होकर आचार्य विनोबा के साथ कार्य करना आरम्भ कर दिया और अब वे हिन्दुस्तान में लोगों के दिल और दिमाग़ को बदलने का कार्य कर रहे हैं।

पहले ही बताया जा चुका है कि लोहिया अशोक मेहता के कांग्रेस समर्थक नीति से बहुत ही असंतुष्ट रहे। जब प्रजा सोशलिस्ट के अध्यक्ष पद पर रहते हुये उन्होंने कांग्रेस की योजना विभाग में कार्य करना स्वीकार कर लिया तो पी० एस० पी० में बहुत ही हंगामा हुआ। क्योंकि प्रजा शोसलिष्ट पार्टी यह कभी भी नहीं स्वीकार कर सकती थी कि वे पार्टी में रहते हुए ऐसा कार्य करें। अन्त में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के श्रीधर महादेव जोशी के नेतृत्व में श्री अशोक मेहता को पार्टी से निकाल दिया गया। श्री मेहता के अन्य बहुत से समर्थक जैसे श्री त्रिलोक सिंह, गेंदा सिंह, चन्द्रशेखर आदि कुर्सी कांग्रेस में जा मिले।

लोहिया कांग्रेस के विरोध में एक शक्तिशाली राजनैतिक संगठन बनाना चाहते थे। क्योंकि इन लम्बे दिनों के बीच कांग्रेस की नीतियों को देश में खुली चूनौती दी थी। उनके सिद्धान्तों का पर्दा फ़ाश कर दिया था और जब उन्होंने यह देखा कि प्रजा सोशलिस्ट पार्टी से कांग्रेसी समर्थक श्री अशोक मेहता आदि अलग होगये। तब उन्होंने दोनों पार्टियों को एक हो जाने का नारा दिया। ताकि देश में समाजवादी विचार को क्रान्तिकारिता के साथ रखा जाय। अन्त में दोनों पार्टियों का एकीकरण हुआ। इसके प्रारम्भिक अध्यक्ष श्री एस० एम० जोशी और महामन्त्री श्री राजनारायण बनारस में चुने गये। पार्टी का नाम रखा गया—संयुक्त-सोशलिस्ट-पार्टी। हालांकि यहाँ पर भी समाजवादी आन्दोलन कमज़ोर बनाने वाले तत्त्व पार्टी के प्रथम

सम्मेलन सन् १९६५ बनारस में ही अलग हो गए। और पी० एस० पी० का निर्माण किया। पर प्रजासोशलिस्ट पार्टी के लड़ाकू नेता और कार्यकर्त्ता पार्टी में बने रहे। पार्टी दिन-प्रति-दिन उन्नति करती गई। और लोहिया के नेतृत्व में इस दल ने १९६७ तक ही आते आते राज्य सरकारों में कांग्रेस को अल्पमत में ला दिया। देश के बहुसंख्यक राज्यों से कांग्रेस की सत्ता उखाड़ फ़ेंकी गई।

●

विरोधी राजनीति का सिमटन

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद २०वीं शताब्दी के तृतीय चरण के उत्तरार्ध में लोहिया को ग़ैर-कांग्रेसवाद की कल्पना सूझी। जिस का प्रारम्भ उन्होंने विरोधी राजनीति के सिमटन से किया। विरोधी राजनीति के सिमटन से तात्पर्य है भारत में विरोधी राजनीति के बिखरन के फैलाव को रोकना, क्योंकि भारत में तृतीय ग्राम चुनाव आते-आते कांग्रेस पार्टी का अस्तित्व धूमिल होने लगा था। संगठन में वह चुस्ती नहीं थी। कथनी और करनी में जनता भी अब अन्तर समझने लगी थी। खास कर हिन्दी इलाकों में तो लोहिया को ग़ैर कांग्रेसी सरकार की सम्भावना तो बहुत ही बढ़ गई थी। इस लिए आम चुनाव के ६ महीने पूर्व उन्होंने यह घोषणा कर दी थी कि हिन्दी इलाकों में ग़ैर कांग्रेस सरकार बनने जा रही है। और हुआ भी ऐसा ही।

देश को ऐसी स्थिति में लाने की सुरुआत तब हुई जब कि लोहिया १९६३ के उप-चुनाव में निर्वाचित हो कर फ़रुख़ाबाद से संसद में आये। और उनके आते ही भारत सरकार के प्रति जिन अविश्वास प्रस्तावों का सिलसिला शुरू हुआ था उससे देश की जनता की आँखें खुलीं। उनके प्रथम ही भाषण से जिसमें उन्होंने सिद्ध किया कि देश की २७ करोड़ जनता तीन आने रोज़ पर गुज़र कर रही है। एक तरफ़ इन्सान गोबर से दाना निकाल कर पेट भर रहा है। अमीर-गरीब की असमानताएँ बेमिसाल बढ़ रही हैं और इधर यह कांग्रेसी सरकार समाजवादी सरकार बनाने की डींग हांक रही है। एक तरफ़ फ़ज़ूल-ख़र्ची बढ़ रही है। सरकारी कर्मचारियों, मन्त्रियों, अफ़सरों पर ख़र्च बढ़ते जा रहे हैं। स्वयं प्रधानमन्त्री जवाहरलाल जी पर २५, ३० हज़ार रुपये रोज ख़र्च हो रहे हैं। यह सब कार्य कांग्रेस पार्टी का जनता को धोखा देना है। यों तो लोहिया संसद के बाहर यह काम यानी भारत के प्रधानमन्त्री पर रोजाना २५ हज़ार रुपये ख़र्च होने का ब्यौरा देश में पहले से देना शुरू कर चुके थे। पर उस वक्त इसे उनका उच्छृंखल नेहरू-द्वेष समझा गया था। लेकिन जब लोक सभा में अपने पहले भाषण में उन्होंने २७ करोड़ भारतीयों का ३ आने रोज पर ज़िन्दगी बसर करने का दृश्य प्रस्तुत किया तो पहली बार सदन को मालूम हुआ कि दोनों तथ्यों में कोई संबंध है। समाजवाद का नारा अपनाए हुए भीमकाय सत्ताधारी दल एक और समाजवाद का पक्ष या विपक्ष

के झूठे नारों के बहाने बँटा हुआ प्रतिपक्ष दूसरी ओर दोनों मिल कर संसदीय लोकतन्त्र को निर्जीव कर रहे थे। लोहिया का इससे वास्तविक उद्देश्य था हिन्दुस्तान के सामने उसकी आर्थिक स्थिति की गति को रखना।

वे कहते हैं—"मैंने जो कहा कि इस देश में २७ करोड़ आदमी रोज़ाना तीन आने पर ज़िन्दगी बसर करते हैं, उसमें मेरा उद्देश्य सरकार का नंगा चित्र आप के और हिन्दुस्तान के सामने रखने का था। लेकिन मेरा ख़ाली यही इशारा नहीं था। मैं चाहता था कि जहाँ मैं रोग को दिखाऊँ वहीं रोग का इलाज भी दिखा दूं। रोग के दरस में इलाज का परस शामिल था। रोग क्या है? रोग यह है कि २७ करोड़ आदमी तीन आने रोज़ पर ज़िन्दगी काटते हैं। साढ़े १६ करोड़ आदमी एक रुपया रोज पर जिन्दगी काट रहे हैं। मैं यह औसत बता रहा हूँ, और ५० लाख आदमी ३३ रुपये रोज खर्च करते हैं। तो जब यह रोग है तो बिलकुल साफ़ है कि इसका इलाज क्या हो सकता है। जो लोग ३३ रुपया रोज़ाना खर्च करते हैं उनको मैं यह नहीं कहता कि उनको तीन आने रोज़ पर ले आया जाय—१५ या १६ रुपये रोज़ पर ले आया जाए, तो आसानी से आमदनी में २५ अरब रुपया और सरकार के करों के आंकड़ों के हिसाब से १५ अरब रुपया बच जाएगा तो एक पंचवर्षीय योजना में ७५ अरब से लेकर एक खरब तक पहुँच जाएगा और उसमें योजना ठीक-ठाक चल सकेगी।" (१६ दिसम्बर १९६३ को लोकसभा में लोहिया का भाषण)

खर्च के विभिन्न तथ्यों को देकर लोहिया ने सिद्ध किया कि वास्तविक हिन्दुस्तान का सुधार तब होगा, योजनाओं का विकास तब होगा, जब ५० लाख लोगों की आमदनी का भेद घटाया जाए। उसे योजनाओं में लगाया जाए।

कांग्रेस सरकार की विदेश-नीति भी ठीक नहीं है। इसकी ग़लत विदेशी-नीति के कारण तिब्बत का अपहरण हुआ। इसे लोहिया ने शिशु की हत्या की संज्ञा दी थी। उनका कहना था तिब्बत हिन्दुस्तान का तकिया था। तिब्बत के ऊपर चीन का स्थापत्य स्थापित करा कर भारत सरकार ने हिन्दुस्तान की नींद हराम कर दी है। यहीं से चीन जैसे राक्षसी साम्राज्यवादी देश की आकांक्षा का विकास हुआ। उसकी आकांक्षा थी भारत-भूमि को हड़प लेना। बाद में उसने ऐसा किया भी। यह सरकार १५ अगस्त सन् १९४७ की जो भारत की भूमि सीमा थी उसकी भी रक्षा नहीं कर सकी। भारतीय सीमाओं में सिकुड़न आई है। हज़ारों मील की संख्या में भारतीय भूमि चीन पाकिस्तान के हाथों में चली गई है। चीन के विषय में लोहिया

कांग्रेस सरकार को सन् १९५५ से ही आगाह करते आ रहे थे। पर उसे यों ही टाल दिया गया। इसी का परिणाम था कि ६२ में चीनी आक्रमण से नेहरू की मूर्ति चटख गई। जनमानस अब ज्यादा सरकार के कार्यक्रम और सिद्धांत पर ध्यान देने लगा था। यों तो पं० नेहरू का भारतीय जनमानस में वह स्थान नहीं रहा जो पहले था क्योंकि देश के तृतीय आम चुनाव आते-आते १९६२ में फूलपुर (इलाहाबाद) में लोहिया नेहरू के विरोध में पराजित तो हो गए पर ४३ केन्द्रों पर सैंकड़ों मतों से नेहरू को पछाड़ दिया था, जिसका अमेरिका का एक मुख्य पत्र 'टाइम्स' ने अपनी टिप्पणी में लिखा —'नेहरू को मत देने वाले दो मतदाताओं के पीछे एक ने सोशलिस्ट पार्टी के नेता को मत दिया।"[1]

भाषा और अन्न के मामले में भी यह सरकार असफल रही है। जो मनुष्य की ये दो अत्यन्त प्राथमिक आवश्यकताएँ होती हैं। भाषा के विषय में उनका कहना था, यह लोकसभा नहीं है। यहाँ तो एक प्रतिशत की भाषा से सरकार अपना शासन चलाती है। बिना लोकभाषा के लोकसभा का कार्य कैसे चल सकता है। भाषा के विषय पर लोहिया के भाषा वाले विचार में विस्तृत विवेचन किया गया है। भाषा के ज़रिए यह काँग्रेसी सरकार भारतीय-जन-समुदाय का शोषण कर रही है।

अन्न के बारे में यह सरकार कोई स्पष्ट नीति नहीं बना पाई है। जिस से किसानों को काफ़ी कठिनाई उठानी पड़ती है। जब अन्न तैयार हो कर किसान के घर आ जाता है। अन्न का भाव गिर जाता है। किसान को अपने घर में शादी, लगान आदि के लिए अन्न बेच कर काम चलाना ही पड़ता है। वह पैसे के अभाव में अन्न बेचता है। कुछ दिनों बाद वही अन्न मँहगा हो जाता है और बाद में जब किसान के घर में खाने को नहीं रहता तो वह उसे महँगे दाम में खरीद कर खाता है। इससे किसान दिन प्रतिदिन ग़रीब होते जा रहे हैं। इस अव्यवस्था को रोकने के लिए उन्होंने मांग की। उनका विचार था कि किसी भी कीमत पर अन्न का उतार-चढ़ाव सवाए या ड्योढे से ज्यादा नहीं होना चाहिए। इसके लिए उन्होंने आंदोलन भी चलाया। जेल भी गए। अपनी इस मांग को लेकर देश में सरकार के सामने अन्न नीति रखना चाहते थे। आज अन्न के विषय में सरकार आत्म निर्भर बनने पर भी अधिक ज़ोर नहीं दे रही है। यह उनकी शिकायत थी। इस बारे में एक क्रांतिकारी रास्ता अख़तियार करने को सोचते थे। इसलिए माननीय प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी के पुत्र की 'छोटी कार' बनाने की योजना की

१. लोहिया, ओ. श. पृ० २७५

भी आलोचना की। और कहा कि अभी देश को १५-२० वर्षों तक छोटी कार नहीं बल्कि ट्रैक्टर, बसें, ट्रक आदि बनाने चाहिएं ताकि कृषिकार्य में क्रांतिकारिता लाई जा सके। "हमारी लोकसभा जन-साधारण द्वारा चुनी गई है, लेकिन वह केवल ऊपरी वर्गों का प्रतिनिधित्व करती है। मिसाल के लिए छोटी मोटर गाड़ी के प्रस्ताव को लें। हमारा कहना है कि मोटर गाड़ियाँ बनाने की सारी क्षमता अगले पन्द्रह बीस सालों तक ट्रैक्टर, बसें, ट्रक और टैक्सियाँ बनाने में लगनी चाहिए। अगर बड़े आदमियों को बस में चढ़ना पड़े, तो फिर धन के केन्द्रीयकरण का मतलब ही नहीं रह जाएगा।"

—पत्र प्रतिनिधियों के साथ जून ६७।

आज तो भारत सरकार कुशल मन्त्री नहीं बल्कि ऐसे मन्त्री को ज़्यादा काबिल मानती है जो विदेशों से अधिक अन्न माँग कर लाये। सरकार की इस नीति पर लोहिया ने ज़बरदस्त प्रहार किया। और अन्ननीति देश के ४४ करोड़ जनता के सामने रखी।

यह सरकार आज अफ़सरशाही चलाती है जिस पर अपार खर्च होता है और दूसरी तरफ़ देश में बेकारी, भुखमरी और ग़रीबी बढ़ रही है। उन नौकरशाहों पर देखने में तो कम पर उन पर उनके वेतन से पाँच गुने से भी ज़्यादा खर्च करती है। वे कहते हैं "हमारा समाज सबसे अधिक भत्तों और सुविधाओं का समाज है। किसी ऊँचे नौकरशाह पर उसके राज्य का खर्च आसानी से उसके वेतन के पाँच गुने से अधिक निकलेगा। ज़्यादा संभावना है कि आठ या दस निकले। खर्च पर सीमा बाँधने से नौकरशाह और व्यापारी दोनों ही मर्यादित होंगे......अगस्त ६७।[१] इसलिये वे चाहते थे कि वेतन में भी इतना अन्तर नहीं होना चाहिये। एक तरफ़ तो किसी को अपार वेतन दिया जाय और दूसरी तरफ़ किसी को भर पेट खाने तक भी वेतन नहीं मिलता। उनके अनुसार किसी को भी १५०० से ज़्यादा और १५० से कम वेतन न मिले। अपने इन विचारों और सिद्धान्तों के द्वारा लोहिया ने जनता का मुख परिवर्तन की गति की ओर मोड़ दिया।

ग़ैर-कांग्रेसवाद :—

सत्तारूढ़ काँग्रेस के इलावा बाकी सभी दलों को विरोधी दल कहा जाता है। देश में परिवर्तन की हवा बह चली है। अब जितना जल्द से जल्द हो इस काँग्रेस सरकार का खात्मा किया जाय। यों तो काँग्रेस सरकार को औसतन देश में क्रमशः ५२, ५७, ६२ तक काँग्रेस के पक्ष में मत घटता गया

१. सम्पूर्ण कांग्रेसवाद १७।

पर विरोधी दलों के विखराव के कारण मतों की संख्या बँट जाती थी। फलस्वरूप काँग्रेस सरकार बनाने में सफल हो जाती थी।

काँग्रेस को खत्म करने के लिये ही लोहिया ने तमाम विरोधी दलों को एक बार ताल-मेल करके चुनाव लड़ने का सुझाव दिया। उनके इन्हीं सिद्धान्तों को ग़ैर काँग्रेसबाद के नाम से जाना जाता है।

"परिवर्तन की प्रक्रिया को जल्दी अन्तिम परिणति तक ले जाने के लिए ग़ैर-काँग्रेसी दलों में ताल-मेल आवश्यक है। यह बात अब साबित हो चुकी है कि ऐसा तालमेल कांग्रेस की सत्ता को खतम करना बहुत ही आसान बना देता है। परिवर्तन की प्रक्रिया ऊपरी न रहे, यह तभी हो सकता है जब साथ-साथ कोई ठोस समयबद्ध कार्यक्रम और यह परिवर्तन जनता की स्वतः स्फूर्ति क्रान्ति की अभिव्यक्ति हो, इसके लिये ज़रूरी है कि संगठन हो"[१]।

—१ मार्च ६७।

ग़ैर-काँग्रेस बाद का आधार:—

"सभी ग़ैर-काँग्रेसी दलों के लिये मिलना सम्भव है क्योंकि सरकार चलाने के लिये एक जैसे दिमाग़ की नहीं, कुछ सामान्य नीतियों की ज़रूरत है। 'एक जैसा दिमाग़' वाली बात अब आगे नहीं होनी चाहिए। एक जैसे दिमाग़ की ज़रूरत दलों के विलयन के लिये होती है, सरकार चलाने के लिये नहीं'[२]......

पर लोहिया ने नकली मोर्चे के लिये अपनी पार्टी के लोगों को कभी भी इज़ाजत नहीं दी। इसी तरह के मोर्चे निरर्थक साबित होंगे। इसमें जिस दल के अपने अस्तित्व का औचित्य कम है उन्हें भी मोर्चे की राजनीति ज़िंदा रखेगी। इस लिये मोर्चा मन और शरीर से युक्त कार्यक्रम और सिद्धान्त के आधार पर होना चाहिये। इसके लिये लोहिया ने ग़ैर-काँग्रेस के सामने अपनी पाँच सूत्री नीति रखी।

१. विपक्ष की एकता, २. समाजवादी एकता, ३. संयुक्त मोर्चे, ४. एक ही लक्ष्य के लिये बने मंच, जैसे दाम बाँधो, अंग्रेज़ी हटाओ, या जाति तोड़ो सम्मेलन, और ५. बिना किसी बन्धन के स्वयं अपने दलों और सिद्धान्तों के लिये कठोर और निष्ठापूर्ण मेहनत।

लोहिया विपक्ष की एकता के लिये अपने दल के सिद्धान्त की शक्ति में

---

१. सम्पूर्ण गैरकांग्रेसवाद पृ० ३।
२. वही पृ० १।

वृद्धि चाहते थे। क्योंकि बिना सिद्धान्तों की शक्ति में वृद्धि किया हुआ मोर्चा दल को नुकसान पहुँचाता है। इस विषय में कहते हैं "पाँचों पहलू एक दूसरे के पूरक हैं। उन्हें विकल्प बनाने के कारण अब तक कड़ा नुकसान हुआ है। मेरी पार्टी के लोगों ने भी बड़ी संख्या में स्वयं अपने दल और सिद्धान्तों की शक्ति का निर्माण किये बिना विपक्ष की एकता का संयुक्त मोर्चों के लिये शक्ति बरबाद की है।" प्रेस ट्रस्ट १० मई ६७।

लोहिया कार्यक्रम और सिद्धान्त के आधार पर ही विरोधी दलों को एक मोर्चे में लाना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने दो रास्ते बतलाये। सकारात्मक और नकारात्मक।

नकारात्मक से उनका तात्पर्य था विभिन्न विरोधी दल एक-दूसरे को लँगड़ी न मारें। एक दूसरे की टाँगें पकड़ कर न घसीटें। लोहिया इस बात से भी बहुत दुःखी थे कि बहुत से दल लोकसभा में सरकारी पक्ष का साथ देते हैं। कभी-कभी वे सरकार के बचाव का हर सम्भव प्रयास करते हैं। इनमें से प्रायः सभी दलों का व्यवहार समय समय पर ऐसा हो जाता है कि पता नहीं चलता कि किस हद तक ये विरोधी और किस हद तक ये सरकार के समर्थक हैं। फिर भी ये अपने को विरोधी दल कहते हैं और ऐसा कहे भी जाते हैं। लोकसभा की सम्पूर्ण प्रतिमा ऐसे ढाँचे में ढली है कि इन सब दलों को विरोधी दल का स्वरूप लेना पड़ता है चाहे उनके मन में कुछ भी चल रहा हो। मन और शरीर के द्वन्द्व के कारण कभी-कभी गड़बड़ हो जाया करती है। लोकसभा की प्रक्रिया ऐसी है कि कम्युनिस्ट अथवा जनसंघ न केवल एक दूसरे के साथ बैठते हैं. बल्कि अक्सर शरीर से सट कर। लेकिन चुनाव के मैदान में ऐसा लगता है कि जितना इन दलों का काँग्रेस पार्टी से विरोध है उतना कम से कम आपस में शायद ज्यादा ही।"[१]

सकारात्मक पहलू के कई अर्थ हो सकते हैं। जैसे अन्तिम मंजिल मिलने से लेकर पहली सीढ़ी सीमित मोर्चे की है, बीच में मोर्चा, व्यापक मोर्चा। इस तरह विरोधी राजनीति को इकट्ठा करने की चार सीढ़ियाँ अथवा चार प्रक्रियाएँ हैं···१. मिलन, २. मोर्चा. ३. सीमित मोर्चा, ४. चुनाव क्षेत्र बंटवारा। फिर भी लोहिया वे इन चारों सीढ़ियों या प्रक्रियाओं को एक दूसरे से अलग माना।

---

१. सम्पूर्ण कांग्रेस बाद।

क्या मोर्चा सिद्धान्तों की हत्या है—

यहाँ पर हम लोहिया के निजी विचारों को मूल रूप में देना उचित समझते हैं। "विरोधी राजनीति को समेटने के खिलाफ़ अक्सर एक तर्क दिया जाता है कि ऐसा करने वाले अपने ही सिद्धान्तों की हत्या करते हैं। तर्क दिया जाता है कि संयुक्त समाजवादी दल देश-प्रेम की हत्या करता है जब वह कम्युनिस्ट के साथ जाता है और ग़ैर-सम्प्रदायिकता की जब वह जनसंघ के साथ जाता है। जहाँ बात चल रही है केवल चुनाव-क्षेत्र के बँटवारे की वहाँ यह तर्क बिलकुल असंगत है। यदि यह सही है कि खुद खड़ा न होकर किसी दल ने अपने मतों को किसी दूसरे दल के सन्दूक में डलवाने का न्योता दिया है तो उसी तरह उसने उन क्षेत्रों में, जहाँ से दूसरे दल खड़ा नहीं हुआ है, वैसा ही काम अपने और अपने सिद्धान्तों के लिये करवाया है तो सिद्धान्त में कहाँ और कौन सी कमी पहुँची। सिर्फ़ चुनाव-क्षेत्र के बँटवारे की प्रक्रिया से कुल मतदाताओं के अनुपात में विशेष अन्तर नहीं आयेगा, अन्तर आयेगा तो इसमें कि यह अनुपात सब क्षेत्रों में बिखरा न रहेगा और इसलिये काँग्रेस को हरा सकेगा।"

"अगर अन्तिम सवाल भी उठाया जाय तो सिद्धान्त और कार्यक्रम के प्रचार का क्या मक़सद है। समझना अथवा शब्दों की गर्मी दिखाना। हमें स्वयं अच्छा नहीं लगता कि किसी एक देश की ओर विशेष झुका जाय, लेकिन कम्युनिस्ट को यह अच्छा लगता हैं। इस सूरत में प्रचार की दो दिशाएँ हो सकती हैं। 'एक कि कम्युनिस्ट दल के झुकाव को थोड़ा सुधारा जाय और दूसरे कि ऐसा सुधार जब तक न हो पाये तो कम्युनिस्ट मतदाताओं की संख्या घटाई जाए। हमें ख़ुद अच्छा नहीं लगता है कि अपने विचार या प्रचार से धर्म और जाति के अलगाव को बढाया जाये। इस अलगाव को घटाने-मिठाने की इच्छा ही प्रिय है, लेकिन जनसंघ की सोच अथवा रुझान अन्य ढंग की है। ऐसी सूरत में दो मनसूबे संचित हैं : एक है जनसंघ की सोच या रुझान में जहाँ तक बन पड़े परिवर्तन लाया जाए और दूसरे यदि ऐसा न हो सके तो उसके मतदाताओं की संख्या घटाई जाए। चुनाव क्षेत्र का बटवारा हो जाने पर इन दो दिशाओं की ओर अग्रसर होने में कोई रुकावट नहीं।"

"कभी-कभी लोग तानों का तर्क कर देते हैं जिसकी जो नापसन्द रही, वैसे पूछते हैं कि क्या अमुक-अमुक सरकार कायम करना चाहते हैं, जनसंघी

अथवा कम्युनिस्टी। इसका जवाब तो सिर्फ़ एक है कि क्या कांग्रेस सरकार को इतना बढ़िया समझते हो। वास्तव में इस तरह के तर्क इतने निस्सार और हवाई होते हैं कि उनका कोई मूल्य नहीं। जब स्थिति ऐसी हो कि किसी एक विरोधी दल को किसी एक विधान-सभा में अकेली बहुसंख्या सोच पाना दुष्कर है, लोकसभा के पैमाने पर इस तरह की कल्पना बिलकुल असम्भव है। दलों की मौजूदा स्थिति को देखते हुए ऐसा सवाल अफ़ीम की पीनक-मात्र है। अगर यह कहा जाए कि किसी सुदूर भविष्य में परिणाम निकलेगा कि जनसंघ अथवा कम्युनिस्टी राज बने तो वैसा डर विरोधी राजनीति के सिद्धांत में उतना ही निहित है जितना बिखरन में। बिखरन और सिमटन दोनों अवस्थाओं में एकांगी और अतिराजनीति का डर समान रूप से रहता है। बल्कि आज के सन्दर्भ में विरोधी राजनीति के सिमटन से जनता को कुछ आशा बँधती है कि उसके लिए अच्छे रास्तों पर चलना ज़्यादा सुगम होता है।"[१]

इस तरह से लोहिया ने सिद्ध किया कि ग़ैर-कांग्रेस-वाद भारत के तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था में अति आवश्यक है। पर यह कार्य-क्रमों और सिद्धांतों के आधार पर सच्ची लगन उद्देश्य निश्चित और दृढ़ हों। मोर्चों के सामने ये सब कार्य-क्रम हो सकते हैं—एक दामों के अनुपात को बाँधना और भुखमरी से मुकाबला। दूसरे माध्यम के रूप में अंग्रेज़ी भाषा का ख़ात्मा, जाति तोड़ो, तीसरे भारत-पाक एक और हिन्दू-मुस्लिम लगाव। ये सब ठोस उद्देश्य हैं और एक-दूसरे से सर्वथा अलग रखे जाएँ। क्योंकि लोहिया इस बात को जानते थे कि सम्भव है कि इन सारी बातों में दूसरा कोई विरोधी दल सहमत न हो। इसीलिए उन्होंने इन सब ठोस उद्देश्य को एक दूसरे से सर्वथा अलग रखने की बात की और यह सुझाव दिया कि "यह सही है कि जिसकी दृष्टि ठीक हो चुकी है उसे इन उद्देश्यों में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध दिखाई पड़ेगा। लेकिन पक्षों, नीतियों और जनता की दृष्टि अभी वैसी नहीं बनी है। इस हालत में एक-एक उद्देश्य के लिए सीमित मोर्चा बनाना चाहिए। जो लोग आएँ उनका स्वागत होना चाहिए।" (वहीं) लोहिया इस बात को जानते थे कि मोर्चे में दलों में नेतृत्व की होड़ मचेगी। पर इसके लिए वे स्पष्ट जनता पर छोड़ देने को कहते हैं। जो कार्य-क्रम और सिद्धांत के पक्ष में फ़ैसला करेगी, न कि किसी दल के नाम पर। "हमारा यह ख्याल है कि सभी विरोधी दलों में संयुक्त समाजवादी दल श्रेष्ठ है क्योंकि इसमें राष्ट्रीयता

सम्पूर्ण और कांग्रेसवाद पृ० १२।

और जनतन्त्र तथा आर्थिक क्रांतिकारिता, मन तथा तन का संमिश्रण है। इस दल ने अपने विभिन्न नामों और अवस्थाओं में व्यापक सिद्धांत और ठोस कार्यक्रमों के आदान-प्रदान की दृष्टि का परिचय दिया है। इसकी सोच और काम में दोष होते हुए भी इसकी नींव सर्वाधिक मज़बूत है। जैसा भी सीमित मोर्चा बने या चुनाव-क्षेत्रों का बँटवारा हो जहाँ मोर्चे की मूठ जितनी लम्बी बन सके बनाई जाए। वही उसकी नोक तेज़ होनी चाहिए। विभिन्न विरोधी दल कैसे सहमत हो सकते हैं कि उनमें से एक मोर्चे की नोक हो। लेकिन मन और हर दल यह बात सोचता है, खास तौर से विरोधियों में कम्युनिस्ट जनसंघ और संयुक्त समाजवादी दल, उनमें से किस की सोच सही है जनता फ़ैसला करेगी। जनता कितना समय लगाएगी कहा नहीं जा सकता। अगर हमारी सोच में दोष नहीं है तो जब भी यह फ़ैसला हो समाजवादी दल के पक्ष में होगा। जनसंघ कम्युनिस्ट और अन्य दलों को चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं। फ़ैसला होगा दल के नाम अथवा नेतृत्व के पक्ष में नहीं, बल्कि उसके कार्यक्रम और सिद्धांत के पक्ष में।"

ग़ैर-कांग्रेस-सरकार

हिन्दुस्तान में ग़ैर-कांग्रेस-सरकार का प्रारम्भ मुख्यतः १९६७ के आम चुनाव से हुआ। इस चुनाव में लोहिया के नेतृत्व में संयुक्त समाजवादी कुछ ठोस उद्देश्य और कार्य-क्रम लेकर उतरा था। जिसका जीता जागता १९६७ के आम चुनाव का घोषणा-पत्र है। जिस घोषणा-पत्र में जन-सरकार की घोषणा की गई थी। जो खेती की सुधार समाजवादी कार्य-क्रमों, समान शिक्षा, जन स्वास्थ्य, उद्योगीकरण, पिछड़ों को विशेष अवसर दिए जाने के कार्य को करते हुए लोक-दिल जीतने की कोशिश करेगी।

अपने इसी ऐतिहासिक चुनाव घोषणा-पत्र पर लोहिया ने काँग्रेस की सत्ता को राज्यों से समाप्त कर दिया। और केन्द्र में भी उसकी शक्ति बहुत घट गई। कई राज्यों में ग़ैर-काँग्रेसी सरकारें बन गई।

लोहिया अपने इस विचार पर दृढ़ रहे कि इस ग़ैर-कांग्रेसी सरकार को ६ महीने के अन्दर ही ऐसा कार्य करना होगा। जिससे जनता ग़ैर-कांग्रेसी सरकार और कांग्रेस में अन्तर समझ सके। खास बिना मुनाफा खेती पर से लागान का खात्मा ६[1] एकड़ भूमि की लगान की समाप्ति और भाषा-समस्या

---

१. सम्पूर्ण ग़ैर-कांग्रेसवाद पृ० १६।

आदि-आदि ग़रीबी दूर करने के कार्य में तो आवश्यक सुधार होगा। इन सुधारों को अगर सरकार कामयाब नहीं बनाती तो इसके लिये इसके विरोध में भी आन्दोलन किया जाय। यह लोहिया का मत था। इसलिए वे अपने बीमारी के दिनों में भी इन सुधारों के लिये काफ़ी चिन्तित थे। पर इसे कौन जानता था कि ६ महीने के इस मर्म को समझने वाला ज्ञाता इस संसार से जल्द ही उठ जायेगा।

इसके आगे लोहिया का क्या कार्य-क्रम होता कहना कठिन है। पर हम उनके उन विचारों को यहां देना पसन्द करेंगे जिनसे आगे का रास्ता साफ़ नज़र आता है—

"मेरी राय में कांग्रेस का दौर ज़्यादा से ज़्यादा दो साल और है। इसके अन्दर-अन्दर ही, जो कुछ ताकत अभी कांग्रेस के पास बची है खत्म हो जायेगी। केन्द्र में भी राज्य में भी। इसलिये कि कांग्रेस के पास कोई नीति नहीं है। और वह किसी समस्या को हल नहीं कर सकती। समस्याएं बढ़ती जाएँगी। और उनको टालना सम्भव नहीं होगा, जैसा कि पहले कांग्रेस करती रही।" मार्च, १८६७।

"भविष्य में साल दो साल तक लोकतन्त्र में लचीलेपन का इस्तेमाल ज़्यादा से ज़्यादा होना चाहिए, और उसके बाद या तो फिर चुनाव होंगे, या विस्फोट होगा, कोई क्राँति या तानाशाही आ जायेगी।"

हमारे साथ एक बड़ी दिक्कत यह है कि एक राष्ट्र के रूप में हम बड़े ही स्थिरता-प्रेमी हैं। स्थिरता तो पेड़ों और पहाड़ों का गुण है। मनुष्य का गुण है परिवर्तन और गति।" फ़रवरी १९५७।

"मेरा ख्याल है कि कांग्रेस के टूटने के बाद देश को तीन से पाँच साल तक और ठीक जगह पहुँचने में लगेंगे। इस अवधि में आशा निराशा के बीच देश झूलता रहेगा। कभी कोई अच्छा काम होगा, फिर उसके बाद निराशा के अवसर आयेंगे। सब मिलाकर इस अवधि में असफलता ही रहेगी। सबसे बड़ी कसौटी इसमें यही है कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि की रफ़्तार सात प्रतिशत के ऊपर चली जाए, जिसके बिना बुनियादी समस्याएँ भी हल नहीं हो सकतीं। इसके लिये विलासिता पर रोक लगानी पड़ेगी। कौन पार्टी है जो आज की खपत को रोक कर उस धन को पैदावार में लगा सके?" मार्च १९६७।

लोहिया ने अपनी मौत के कुछ दिन पहले ही कई महत्त्वपूर्ण देशों का दौरा किया था। वे पटना भी गये। पटना में श्री जयप्रकाश से भी मिले।

और वह भी बन्द कमरे में एकान्त में। घण्टों बात-चीत करते रहे। और तत्काल ही दिल्ली आने पर और अपने मौत के करीब १ महींना पहले यह घोषणा भी कर दी कि अब फूल खिलने वाले ही हैं।"

उनकी इस घोषणा से राजनैतिक क्षेत्र में हलचल मची और इससे कई अर्थ निकाले जाने लगे। क्योंकि लोहिया का कोई भी कार्य उसको सफलता के मार्ग पर लाने के पहले केवल सूत्र रूप में ही होता था। काँग्रेस पार्टी अपने पतन के कगार पर आगई थी। इसलिये सभी समाजवादी यह अर्थ निकालने लगे कि अब एक दल बनेगा। क्योंकि देश के लिये यह जरूरी है और उस में श्री जयप्रकाश जी भी आयेंगे। उसका नेतृत्व करेगें। अगर सचमुच लोहिया ने यह कार्य किया था तो उन्हें हम समाजवादी एकता के पैग़म्बर मानते हैं। पर इसे श्री जयप्रकाश के इलावा और कोई नहीं जानता। क्योंकि बातें केवल लोहिया और जयप्रकाश के बीच हुई थीं। लोहिया की बीमारी के दिनों में जयप्रकाश जी हमेशा दिल्ली में ही रहे। उन्होंने अपने सभी देशी और विदेशी दौरो को समाप्त कर दिया। ऐसा लगता था कि अब वे दोनों विचारक समझ गये थे कि अब देश को दोनों के नेतृत्व की ज़रूरत है।

यह बात लोहिया के इस बयान से निकाली जासकती है।

"जैसा मैंने कहा, काँग्रेस के जाने के बाद बारी-बारी से **इक्का-दुक्का** अच्छे काम और फिर निराशा का क्रम चलेगा, जब तक कि हम एक सुख कर पार्टी में नहीं आ जाते **लोगों का एक ऐसा समूह सामने आयेगा जो नीतियों और सिद्धान्तों को मानने वाला होगा, किसी प्रकार का समाजवादी दल। उसी को आगे बढ़ाने की हम कोशिश कर रहे हैं।"**

"वह एक **वामपक्षी** दल होगा, लेकिन सिर्फ़ सम्पत्ति, आमदनी और खर्च के मामले में नहीं राष्ट्र की सीमाओं, भाषा वगैरह के बारे में भी। इन मामलों में पुराना वाम-पन्थ दक्षिण-पन्थ के भी दक्षिण में ही इसी अवधि के बाद एक नयी एकता बनेगी लेकिन आज की सड़न से वह गड़बड़ी की स्थिति भी अच्छी होगी। आज की हालत एक सूखे सपाट रेगिस्तान की तरह है, जिसके बाद हम दुर्गम को पार करेगें और इसके बाद आशा की घाटी में प्रवेश करेंगे।" —मार्च ६७[1]

सम्भवत: लोहिया का विचार था कि कांग्रेस पार्टी को बिल्कुल ही समाप्त

---

१. सम्पूर्ण गैर-कांग्रेसवाद पृ० ३।

न कर दिया जाय। इसे भी रहने लायक रहने दिया जाय। कांग्रेस का केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल भी अब पतन के करीब था।

इस मन्त्रिमण्डल की समाप्ति के बाद कांग्रेसी लोगोंको कुछ दिन पछताना और प्रायश्चित करना चाहिये। "इन लोगों को कुछ दिन पछतावा और प्रायश्चित्त करना चाहिये। जो धन इन्होंने संचित किया है, वह इन्हें वापस लौटाना होगा, हालांकि जो विशाल मात्रा इन्होंने बरबाद कर दी उसके बारे में कुछ नहीं किया जा सकता।"[१]

---

१. संपूर्ण ग़ैर कांग्रेस पृ० ३।
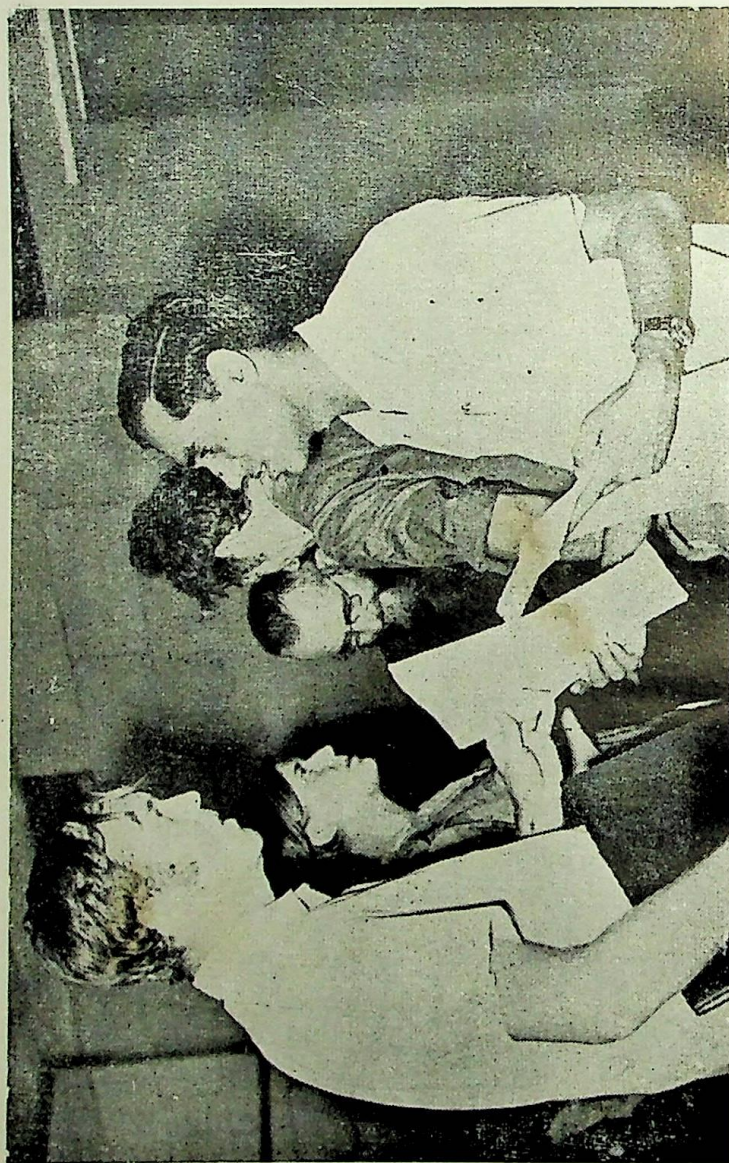
पूर्वी पाकिस्तान में आज़ादी की लड़ाई के समय नई दिल्ली, १८ से २० सितम्बर १९७१ को बंगलादेश सम्मेलन के अवसर पर देशी और विदेशी प्रतिनिधियों को लोहिया के विचारों से अवगत कराता हुआ लेखक। लोहिया ने पूर्वी पाकिस्तान की आजादी की घोषणा १९४८ में ही करदी थी।

दूरदर्शी डा० लोहिया की दृष्टि में बंगला देश

श्री जयप्रकाश नारायण के प्रयास से नई दिल्ली में १८ से २० सितम्बर १९६९ को एक अन्तर्राष्ट्रीय बंगलादेश सम्मेलन हुआ था। जिसमें करीब दो दर्जन देशों के प्रतिनिधि आये थे। इसमें ब्रिटेन, अमरीका (समाजवादी) नाइजीरिया, मलयेशिया, लंका, नेपाल आदि देशों के लोगों ने विशेष रूप से रुचि ली। भारत की प्रायः सभी पार्टियाँ इसमें सम्मिलित हुईं। सत्ताधारी कांग्रेस और भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी के सदस्य सम्मिलित नहीं थे।

पश्चिमी पाकिस्तान का दमन चक्र बंगला देश पर चल रहा था। पाकिस्तानी शासक याहिया खाँ मानवता के सभी मूल्य को ताक पर रखकर क्रूर अत्याचार कर रहे थे। इसी लिये बहुत से लोग चिन्तित थे कि बंगला-देश की समस्या का समाधान जल्द से जल्द होना चाहिये। भारत की सरकार भी अभी मान्यता के सवाल पर चुप बैठी है। मुक्तिवाहिनी बिना अस्त्र-शास्त्र के कब तक मुकाबला कर सकती है। यह सोचनीय बातें थीं।

बंगला देश से सम्बन्धित समस्याओं की कल्पना डॉ० लोहिया को देश के बँटबारे के कुछ महीने बाद ही सूझ गई थी। और इससे आने वाली कठिनाइयों का भी उन्हें अन्दाजा लग गया था। डॉ० लोहिया ने सन् ४८ में ही कहा था कि पूर्वी पाक में आजादी की लहर आयेगी। पर उनकी यह शंका भी थी कि ऐसे समय पर भारत की सरकार तटस्थ रह सकती है। लेकिन भारत के लोग ऐसा न करें। उनकी आजादी की असलीयत को स्वीकार करें और साथ ही साथ भारत सरकार पर इतना दबाव डालें कि भारत की सरकार उनको मान्यता दे। क्योंकि ऐसा करने पर ही विश्व के अन्य देश मान्यता देंगे। पर सबसे पहली जिम्मेदारी भारत पर होगी।

लोहिया के इन्हीं विचारों को लेकर मैंने एक लेख लिखकर प्रतिनिधियों में वितरित किया था। उसी को यहाँ देना उचित समझता हूँ।

भारतीय राजनीति के इतिहास में स्वर्गीय डा. लोहिया का नाम भविष्य-वक्ता के रूप में लिया जाता है। क्योंकि जो कुछ भी उन्होंने अपने जीवन-काल में भविष्यवाणियाँ की थीं वे शत प्रति शत सही हुई हैं। चाहे वह

तिब्बत का मामला हो या चीन आदि का। इसी तरह से डा० लोहिया ने हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के संबंध में भी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'हिन्दू बनाम हिन्दू' में कुछ बातें कही हैं जिसे मैं पाठकों के सामने रखना चाहूँगा।

डा० लोहिया भारत-विभाजन के सख्त विरोधी थे। उनका विचार था कि हिन्दुस्तान को यहाँ के भौगोलिक सीमाओं, पर्वतों, नदियों समुद्रों तथा अन्य सांस्कृतिक कृतियों ने एक विशाल देश बनाया है। यहाँ की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि इस देश का बँटवारा नहीं किया जा सकता। फिर भी इस देश का बँटवारा कैसे हुआ। इस पर उन्होंने 'भारत-विभाजन के अपराधी' नाम से एक पुस्तक भी लिख डाली है।

लोहिया की मान्यता थी कि पाकिस्तान जो हिन्दुस्तान का एक हिस्सा हैं, जिसे १५ अगस्त १९४७ को तोड़ कर भारत से अलग कर दिया गया है, इतिहास में अपना स्थान स्थायी नहीं बना सकता। पाकिस्तान की बनावट बिल्कुल ही नकली है। एक दिन वह टूटेगा, चाहे जब टूटे। यह ऐतिहासिक तथ्य है। इसे कोई रोक नहीं सकता। उन्होंने कहा कि स्वयं पाकिस्तान में उसके आपसी रिश्ते भविष्य में बिगड़ेंगें और अन्त में वह अलग-अलग होंगे। पर यह नियम भारत पर नहीं लागू होगा। वे कहते हैं "क्योंकि हिन्दुस्तान का कोई हिस्सा नहीं जो उसका स्वाभाविक अंग न हो, या जो उससे अलग होना चाहता हो। इसके विपरीत पाकिस्तान की बनावट बिल्कुल नकली है। पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान का मौजूदा रिश्ता क़ायम नहीं रह सकता। पूर्वी पाकिस्तान, पश्चिमी पाकिस्तान का ग़ुलाम बन जायेगा। या फिर पश्चिमी पाकिस्तान के साथ उसके रिश्ते बराबर ढीले पड़ते जायेंगे और उसे हिन्दुस्तान में अपने पड़ोस के इलाकों के साथ सम्बन्ध बढ़ाने होंगे। पश्चिमी पाकिस्तान के पास इतनी फ़ौजी ताकत नहीं कि वह पूर्वी पाकिस्तान को ग़ुलाम बना सके। सैद्धान्तिक प्रभाव निस्सन्देह है, लेकिन कितने दिन कायम रहेगा—यह नहीं कहा जा सकता। अतः ग़ुलामी की अपेक्षा स्वाधीनता की संभावना ज्यादा है।"

(हिन्दू बनाम हिन्दू, सितम्बर १९५०।

लोहिया ने साफ़ कहा था कि पूर्वी बंगाल में स्वतन्त्रता की लहर पैदा होगी। लेकिन उस समय पाकिस्तान एक चाल चलेगा। वह चाल उसकी यह होगी कि वह इन सारी घटनाओं का दोष भारत पर देने की कोशिश करेगा। और ऐतिहासिक तथ्यों से बचने की कोशिश करेगा। इतिहास के परिणामों से

नहीं बचा जा सकता। हिन्दुस्तान चाहे इसमें कोई मदद न करे। फिर भी पाकिस्तान को शक होगा और स्वाभाविक रीति से विकसित होने वाली चीज़ का दोष वह हिन्दुस्तान पर डालेगा। इन झगड़ों को बुद्धि से सुलझाने की बजाय पाकिस्तान संबंधों पर जिम्मेदारी डालने का खतरनाक तरीका अपनाया है। (वहीं)

लोहिया का विचार था कि भारत सरकार ने खान अब्दुल गफ़्फ़ार खाँ का साथ न देकर महान् भूल की है। जिसके कारण ही तानाशाही पाकिस्तान ने पठान लोगों का भयंकर हत्याकाण्ड किया। १२ अगस्त, १९४८ को चरसदा और बाद में स्वाबी में खुले आम लोगों को हत्या के घाट उतार दिया। लेकिन अगर पूर्वी बंगाल (आधुनिक आज़ाद बंगला देश) के लोग अपनी आज़ादी की मांग करें. तो इस बार भारत सरकार को तटस्थ नहीं रहना चाहिए। अगर भारत सरकार नटस्थ रहती है तो भारतीय जनता को ऐसा नहीं करना होगा।' "पाकिस्तान में इलाकों का अनमेल इतना अधिक है कि वह किसी भी समय ताश के महल की तरह गिर सकता है। लेकिन ऐसा होने से पहले मुमकिन हैकि वह हिन्दुस्तान को दोष देकर दंगों और युद्ध की नीति पर चल कर अपने ऐतिहासिक भविष्य को बचाना चाहे। हिन्दुस्तान के लोग एक बार सीमा प्रान्त और उसके खुदाई-खिदमतगारों के साथ बिश्वासघात करने की नीचता के अपराधी बन चुके हैं। हिन्दुस्तान की सरकार अब भी उनकी उस पूर्वी पाकिस्तान की यातना के सामने तटस्थ रह सकती है, लेकिन यह जरूरी हैं कि हिन्दुस्तान के लोग ऐसा न करें।" (वहीं)

संघर्षात्मक राजनीति में विश्वास करने वाले डा० लोहिया अगर इस समय मौजूद होते तो क्या करते यह तथ्य उनके प्रगट किये गये विचारों से आसानी से निकाला जा सकता है। उन्होंने आगे यह भी लिखा है कि ऐसे समय पर सरकार और जनता का क्या रुख होना चाहिए आदि। उन्होंने यह भी लिखा है कि पाकिस्तान को बढ़ावा देने को अब ब्रिटेन के स्थान पर अमेरिका होगा। "सभी लोग जानते हैं कि हिन्दुस्तान के ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में रहने का बड़ा कारण यही है कि पाकिस्तान के बारे में हिन्दुस्तान ब्रिटेन की नैतिक चेतना को जगाना चाहता है। यह नीति आंशिक रूप से सफल हुई। क्योंकि पाकिस्तान को बढ़ावा देने में जो काम ब्रिटेन नहीं कर सकता वह अब अमेरिका करने लगा है।" (वहीं फ़रवरी १९५०)।

लोहिया का विचार था कि हिन्दुस्तान-पाकिस्तान का झगड़ा मिट ही

नहीं सकता। जब तक कि इन दोनों देशों का एक महासंघ नहीं बन जाता। हम सब फिर एक ही खानदान के अन्दर नहीं आ जाते। इसलिए यह ज़रूरी हो गया है कि हिन्द-पाक की जनता बुनियादी तौर पर सोचना शुरु करे।

लोहिया जीवन पर्यन्त यह सपना देखते रहे कि हिन्द-पाक फिर एक इकाई में बंधे। यह कैसे संभव है। इसके लिए उन्होंनें तीन रास्ते बताए हैं। "सन् १९४८ में बँटवारे के कुछ महीने बाद मैंने कहा था कि तीन में से किसी एक या तीनों तरीकों से पाकिस्तान का अन्त हो जायेगा—बात-चीत के ज़रीये संघीय, एकता हिन्दुस्तान में समाजवादी क्रान्ति, और पाकिस्तान के हमला करने ऊपर हिन्दुस्तान का जवाबी हमला। इस भाषण से श्री जिन्ना, जो उस समय पाकिस्तान के गवर्नर जनरल थे, चिढ़ गये थे। महात्मा गांधी उस समय जिन्दा थे, लेकिन इस राय को बदलने की मैं कोई ज़रूरत नहीं देखता सिवाय इसके कि उनकी मृत्यु से एकता के सारे काम धीमे पड़ गये।

"हिन्दुस्तान और पाकिस्तान तो एक ही धरती के अभी-अभी दो टुकड़े हुए हैं। अगर दोनों देशों के लोग थोड़ी भी विद्या बुद्धि से काम करते चले गये तो दस-पांच बरस में फिर से एक होकर रहेंगे। मैं इस सपने को देखता हूँ कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान फिर से किसी न किसी एकाई में बंधे।" (लोहिया के विचार पृ० २६८, १९६३)

आज़ाद भारत में लोहिया का यह सपना केवल एक मात्र सपना ही माना जाता रहा। जब डा० लोहिया ने लोक-सभा में हिन्द-पाक के विषय में अपने इस सपने को रखा था तो बहुत से संसद्-सदस्यों ने लोहिया से कहा था कि लोक-सभा सपना देखने का स्थान नहीं है। लोहिया ने इसके जवाब में कहा था स्वतन्त्रता संग्राम के लड़ाई के प्रारम्भ में भी बहुत से लोग देश में आज़ादी को सपना ही मानते रहे। उस समय भी बहुत से लोग यही कहते थे कि अंग्रेज़ों को भारत से भगाना एक सपना है। पर आज़ादी का सपना फैलता गया तिलक से गांधी तक। गांधी ने इस सपने को और फैलाया। यह किसान मज़दूर, विद्यार्थी आदि तक फैला। तब सपना साकार हो गया। देश आज़ाद हुआ। हम भी सपना देखते हैं आप से कहते हैं कि इसे आप भी देखना शुरू करो। इस सपने को देश की ज़नता तक पहुँचाओ। जिसमें दोनों देश की जनता शामिल हो। फिर आप ज़रूर देखेंगे कि यह सपना साकार होगा। लेकिन ऐसा महसूस होता है कि लोहिया के इस सपने में कुछ तथ्य ज़रूर है क्योंकि अब यह सपना अन्तर्राष्ट्रीय जगत् तक भी फैल रहा है। इसी विषय पर अभी हाल में लोहिया की मौत के चार वर्ष बाद इस बंगला देश की

समस्या पर अपना विचार प्रकट करते हुए ब्रिटिश लेबर पार्टी के संसद्-सदस्य श्री आर्थर वाटमली ने भी ऐसा सपना देखा है। मद्रास २८ अगस्त (प्रे० ट०) ब्रिटिशन लेबर पार्टी के संसद्-सदस्य श्री आर्थर वाटमली ने आज यहाँ कहा कि मैं चाहता हूँ कि पाकिस्तान और भारत निकट आयें। इन दोनों देशों को मैं पुनः एक देखना चाहता हूँ......क्योंकि यह उप-महाद्वीप सांस्कृतिक दृष्टि से महान् हैं ......दैनिक हिन्दुस्तान ३० अगस्त, १९७१)।

लोहिया का धर्म

शीर्षक पढ़कर पाठकगण आश्चर्य करेगा, क्योंकि जिस व्यक्ति ने ईश्वर में, धर्म में, जाति में जीवन पर्यन्त विश्वास नहीं किया उसका धर्म कैसा ? आमतौर पर लोहिया को नास्तिक कहा जाता है। क्योंकि उनका ईश्वर में विश्वास नहीं था। वे अनीश्वर-वादी थे। पर भारतीय वाङ्मय में आस्तिक, नास्तिक की धारणा दो दृष्टिकोणों से है। पहला तो नास्तिक उन्हें कहा जाता है जिनका वेद में विश्वास नहीं है, आस्तिक उन्हें जो वेद में विश्वास करते हैं, आशावादी है। दूसरा दृष्टिकोण है—जो ईश्वर में विश्वास नहीं करता उसे नास्तिक और जो ईश्वर में विश्वास करता है उसे आस्तिक। आस्तिक आत्मा के अमरत्व पर विश्वास करते हैं। उनका पुनर्जन्म में विश्वास होता है। पर लोहिया उसको कतई नहीं मानते। कहते हैं, 'पुनर्जन्म कभी नहीं हुआ करता।"

भारतीय धर्म के इतिहास में तरह-तरह के विचार देखने को मिलते हैं। बुद्ध ने न तो वेद में विश्वास किया और न ईश्वर में, पर समय ने स्वयं उनको भगवान् की श्रेणी में ला दिया। अन्त में वे विष्णु के अवतारों में एक माने जाने लगे। लोहिया का न केवल वेदों में विश्वास था बल्कि उन्होंने साथ-साथ अन्य ग्रन्थों उपनिषदों, ब्रह्मणग्रन्थ, रामायण, महाभारत, गीता आदि के गहन अध्ययन पर जोर दिया। वे महाभारत की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं और शान्तिपर्व को दुनिया की किसी भी राजनैतिक पुस्तक से श्रेष्ठ मानते हैं।

लोहिया ने प्रायः तीर्थस्थलों का अवलोकन किया है। चाहे वह हिमालय से कन्याकुमारी के बीच हो या कश्मीर से बंगाल की खाड़ी के बीच। चाहे वह हिन्दुओं के काशी के बाबा विश्वनाथ का मन्दिर हो, महावल्लिपुरम् का मन्दिर, श्वेतबान्ध रामेश्वरम् का मन्दिर बद्रीनाथ का मन्दिर, कोणार्क का सूर्य मन्दिर, खजुराहो का कन्दरीया महादेव का मन्दिर हो या बौद्धों के प्रमुख साँची, कौशाम्बी, कुशीनगर, बोधगया, सारनाथ आदि के मन्दिर। चाहे जैनों के आबू के जैन मन्दिर—दिगम्बरों का हो या श्वेताम्बरों का। चाहे वह दिल्ली का जामा मस्जिद हो या आगरे का गुरुद्वारा, गिरजाघर।

लोहिया इन भगवान् के घरों को देखकर फूले नहीं समाते थे। बल्कि जब कहीं किसी शहर में कार्य-क्रम होता तो वे इन्हीं सब मन्दिरों के पास ही अपना सयनकक्ष बनाते। बनारस में सारनाथ उनकी बहुत ही प्रिय जगह थी। मुझे ऐसा आभास होता है कि लोहिया को बुद्ध के व्यक्तित्व ने आकर्षित किया था। शायद इसीलिए कि महान् मानवतावादी गौतम ने सर्वप्रथम मानवता का प्रथम पाठ दुनिया के सामने यहीं रखा था। उन्होंने प्रायः सभी बौद्ध तीर्थस्थलों का बहुत ही रुचि के साथ भ्रमण किया था। उनकी मृत्यु-परान्त दो अज्ञात बौद्ध भिक्षुओं ने भी उनके शव पर फूल चढ़ाये थे।[1] सम्भवतः वे भिक्षु लोहिया के व्यक्तित्व से आकर्षित थे। क्योंकि लोहिया ने भी बुद्ध की तरह मानव-मानव में भेद नहीं किया। छुआछूत, धर्म के आडम्बरों से दूर रह कर मानवता की बकालत् की।

लोहिया मन्दिरों के स्थापत्पकला, मूर्तिकला, ललितकला को देखते ही रह जाते। सम्भवतः वे कल्पना करते थे कि मानव कितना अपने कला में, गुणों में महान् रहा होगा जिसने भगवान् को बनाकर, उनको मानव रूप में व्यक्त कर दुनिया के सामने रखा है। वह उन मानव के बारे में ज्यादा चिंता करते या अधिक से अधिक जानकारी हासिल करने की कोशिश करते जिसने कि इस भगवान् को बनाया है या रूप दिया है। या उनके निवास स्थान को अपने चरमोत्कर्ष स्थापत्पकला के ज्ञान से संवारा है। इसीलिए वे भारतीय कला को दुनिया के किसी भी सर्वश्रेष्ठ कला से तुलनीय मानते थे।

"वैभव, धन और स्थापत्य कला की दृष्टि से हमारा युग भी रहा है। स्थापत्य कला में भारत, गायन, वाद्य में यूरोप और चित्रकला में जापान हमारे खयाल से सबसे अच्छा देश है।[2]

वे भारतीयता के पुजारी थे। इसी लिए वे यहाँ के पुरातत्त्व के विषय में विदेशियों के दृष्टिकोण की भी आलोचना करने में नहीं हिचकिचाते। इसका प्रमाण है कि उनका साँची स्तूप के विषय में (जो आज दुनिया में सबसे प्राचीन और पूर्णरूप से विद्यमान है) संसद् में प्रश्न पूछना। क्योंकि उनको हुद ही दुःख था कि यूनेस्को द्वारा प्रकाशित (अन्तर्राष्ट्रीय आयोग द्वारा लिखी गई) पुस्तक में सांची के स्तूप को चीन के काष्ठ स्थापत्यकला की नकल कहा गया था, जो बिल्कुल ग़लत और निराधार है। लोहिया का विचार था कि ऐसी पुस्तकों से नई पीढ़ी पर ग़लत प्रभाव पड़ता है और यह

---

१. स्वन्त्रत भारत, लखनऊ १४ अक्तूबर १९६७
२. लोहिया के विचार पृ० ९९।

सोचती है कि भारतीय सभ्यता विदेशियों से प्रभावित है।

लोंहिया भारत के तीर्थ स्थलों की उपेक्षा से बहुत ही दुःखी थे। "भारत के महानतम तीर्थ-केन्द्रों जैसे द्वारका, प्रयाग, रामेश्वरम्, अयोध्या, बनारस और अजमेर की दुर्भाग्यपूर्ण उपेक्षा की जा रही है।……भारतीय-जन के एक प्रतिनिधि के रूप में कोई भी समझदार आदमी लोक-कल्याण की देशीय नीतियों के आधार पर भारत के महान् तीर्थ-केन्द्रों के जीर्णोद्धार के लिये आन्दोलन करेगा।"[1] डा० लोहिया का ख्याल था कि ये तीर्थस्थान हिन्दुस्तान को एक सूत्र में बांधने में बड़े सहायक हैं। अगर किसी को सारे हिन्दुस्तान का दर्शन करना हो तो उसे किसी तीर्थस्थान पर खड़ा हो जाना चाहिये जहाँ उसे घण्टे के अन्दर ही चलता फिरता हिन्दुस्तान नज़र आयेगा। २३ अगस्त १९५९ को कुशीनगर देवरिया (यू. पी.) में तीर्थस्थलों के पुनरुद्धार पर एक व्यक्तव्य देते हुए लोहिया ने कहा था—"मैं मन्दिरों में अक्सर जाता हूँ और मैं रामेश्वर की ओर ऐसा दौड़ा जैसे गाय की ओर बछड़ा। तुलनात्मक दृष्टि से तीर्थ बड़ी सान्त्वना देते हैं। किसी भी महान् मन्दिर के एक कोने में खड़े हो जाइये एकाध घण्टे में आप सारे हिन्दुस्तान को चलते-फिरते देख सकते हैं। मैं पूजा करने में अब तक असमर्थ और शायद हमेशा ही असमर्थ रहूँगा। किन्तु समय निकालकर काल द्वारा पवित्र किये गये स्थानों पर अपने देश-वासियों को मैं पूजा करते देखना चाहता हूँ।"[2]

तीर्थकेन्द्र की तरह से ही वे नदियों की सफ़ाई पर भी बहुत ज़ोर देते रहे। "आज भारत का वर्तमान जीवन-क्रम और अतीत भी बहुत कुछ किसी न किसी नदी से जुड़ा हुआ है, ये हाल सारी दुनिया का हैं (मिश्र की सभ्यता नील नदी के किनारे पनपी, सिन्धु सभ्यता सिन्धु नदी के किनारे फूली आदि) पर यहाँ बहुत अधिक। यदि मैं राजनीति करने के स्थान पर अध्ययन के क्षेत्र में होता तो इस सम्बन्ध मैं गहरी जाँच करने में समर्थ होता। राम की अयोध्या सरयू के किनारे थी, कुरु, मौर्य और गुप्त-साम्राज्य गंगा के किनारे पनपे और मुगल और सौरसेनी नगर और राजधानियाँ यमुना के किनारे पर बसीं। शायद पूरे वर्ष भर पानी की आवश्यकता एक कारण हो सकता है, लेकिन सांस्कृतिक कारण भी हो ही सकते है।……सभी बड़े साम्राज्य नदी किनारे

---

१. लोहिया के विचार पृ० २५१।

२. 'आज' साप्ताहिक विशेषांक २२ अक्तूबर १९६७।

ही बढ़े हैं। मिसाल के लिये—चोल, पांड्या और पल्लव राज्य क्रमशः कावेरी, वैगई और पालार नदियों के किनारे थे।"

"अपने देश में बसने वाले चालीस करोड़ लोगों के लगभग एक या दो करोड़ प्रति दिन नदी में नहाते और पचास से साठ लाख लोग नदी का पानी पीते हैं। उनके दिल वा दिमाग़ इन नदियों से जुड़े हैं। पर नदियाँ हैं कैसी ? शहर का गन्दा पानी और अन्य गन्दगियाँ इन में गिराई जाती हैं। गन्दा पानी अधिकांश कारखानों का होता है और कानपुर में चमड़े के कारखाने हैं जिससे पानी और भी अस्वास्थ्यकर होता है। फिर भी ऐसे पानी को हज़ारों की संख्या में लोग पीते और उसमें नहाते हैं।······

'क्या हमें नदियों को गन्दा किये जाने के विरुद्ध आंदोलन चलाना पड़ेगा ? यदि ऐसा आन्दोलन सफल हो जाता है तो इसका नतीजा होगा कि काफ़ी रुपया बचेगा। गन्दा पानी गंगा और कावेरी में गिराने के बजाय दस या बीस मील के नाले बनाकर खेतों में गिराया जाय। खाद जमा करने के गढ़े बनाये जाएँ। यह काम ख़र्चीला लगता है। लेकिन दिमाग़ के पूरे ढर्रे को पूरी तरह बदलना होगा। शायद खर्च करोड़ों का हो, पर क्या सरकार प्रति वर्ष पंचवर्षीय योजनाओं पर बाइस करोड़ नहीं खर्च करती ?"[1]

लोहिया नदियों में शहर के तमाम गन्दगी गिराने से बहुत ही दुःखी थे। जिस नदी का लोग पानी पीते हैं स्नान करते है उनके लिये पवित्र ही हैं। उसी नदी में बनारस, प्रयाग, कानपुर, आदि में नालों द्वारा सारी गन्दगी लाकर गिरा दी जाती है। उनके लिये यह असह्य था। इन नदियों को लोहिया भारतीय महिलाओं के प्रस्तररूप की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरियाँ मानते हैं। "गंगा एक ऐसी नदी हैं जो पहाड़ियों और घाटियों में भटकती फिरती है, कलकल निनाद करती है, लेकिन उसकी गति एक भारी-भरकम शरीर वाली औरत के समान मंदगामिनी है। गंगा का नाम गम् धातु से बना है, जिससे गमगम संगीत बनता है, जिसकी ध्वनि सितार की थिरकन के समान मधुर है। भारतीय शिल्प-कला के लिये, घड़ियाल पर गंगा और कछुए पर उसकी छोटी बहन यमुना एक रुचिकर विषय है। यदि अनामी मूर्तियों को शामिल न किया जाए, तो वे भारतीय महिलाओं के प्रस्तर रूप की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरियाँ हैं।[2]

---

१. लोहिया के विचार पृ० २७३।

२. लोहिया के विचार पृ० २६६।

लोहिया ने यह सरकार के प्रति आरोप लगाया था कि यह सरकार करोड़ों की चिन्ता न कर कुछ की ही चिन्ता करती है। अगर वह करोड़ों की चिन्ता करती तो नदियों को साफ़ करने की योजना बन गयी होती। नदी सफ़ाई योजना के लिये उन्होंने पार्टी के इलावा अन्य लोगों से भी सभाएँ, जुलूस, सम्मेलन बुलाकर सरकार को विवश करना चाहते थे कि इन ३ या ५ महीने के भीतर सरकार गन्दा पानी खेतों में पहुँचाने का प्रबन्ध करे, नहीं तो मौजूदा नालों को तोड़ना होगा। ऐसे ध्वंस में हिंसा कभी भी न होगी। कबीर ने कहा है—

माया महाठगनि मैं जानी
केशव की कमला बन बैठी,
शिव के भवन भवानी
पण्डा की मूरत बन बैठी
तीरथ में भई पानी।

तीरथ क्या है? सिर्फ़ पानी। लोगों को सरकार से कहना चाहिए—"बेशरम, बन्द करो, यह अपवित्रता" मैं फिर कहता हूँ—मैं नास्तिक। मेरे साथ तीर्थ-यात्रा की सम्भावना नहीं है। मुख्य बात यह है कि यह देश किस का है? तीस लाख का या चालीस करोड़ का? १९५८।[1]

डा० लोहिया के धर्म का उद्देश्य था, एकमात्र ग़रीबी दूर करना। "बनारस शहर में भगवान् विश्वनाथ को लेकर झगड़ा चला। अब एक नया मन्दिर बन रहा है। वास्तव में यह झगड़ा भगवान् विश्वनाथ को लेकर न था। झगड़ा था ब्राह्मणनाथ और चमारनाथ का। हिन्दू दिमाग़ बेकार की बातों में ज्यादा फंसा रहता है। यदि जैसा मैंने सुझाव दिया था, केवल करपात्री जी करते तो मामला निपट गया होता। लेकिन वे भी किस दुनिया के प्रतिनिधि हैं? वे तो करोड़पतियों और राजस्थान के सामन्तों के प्रतिनिधि हैं। एक ही जगह दो विश्वनाथ मन्दिर खड़ा करने से कोई समस्या हल न होगी। जो आवश्यक है वह यह कि सारे देश का पुनर्निर्माण हो और गरीबी मिटे।"

परिभाषा

लोहिया ने अपने अनेक प्रकार के विचारों को समाज के सामने रखा। जो उनके निजी विचार होते थे। इन्हीं विचारों में कभी-कभी उनके धर्म-

---

१. लोहिया के विचार पृ० २७४ :

सम्बन्धी विचार भी हुआ करते थे, जिसे यहाँ देना उचित होगा। **'धर्म दीर्घ-कालीन राजनीति है और राजनीति अल्पकालीन धर्म है।"**

यह बढ़िया धर्म और बढ़िया राजनीति की परिभाषा है; घटिया धर्म और घटिया राजनीति की नहीं। विकृत होने पर तो न जाने क्या-क्या हो जाया करता है।[1]

डा० लोहिया ही ऐसे व्यक्ति हैं जो धर्म की कड़ी को राजनीति की कड़ी से जोड़ देते हैं और इस परिभाषा के बाद उसका स्पष्टीकरण भी करते हैं। "इस परिभाषा के बाद धर्म का खास काम हो जाता है, हो क्या जाता है, है ही, कि धर्म है अच्छाई को कहना और अच्छाई की तारीफ़ करना और राजनीति है बुराई से लड़ना और बुराई की निन्दा करना।' एक ही चीज़ के दो पहलू हैं। बहुत आलस में और जल्दी में देखने लगें गे तो झट से मुंह से निकल जाए गा कि दोनों में फ़र्क क्या है। लेकिन फ़र्क तो बहुत ज्यादा है। बुराई से लड़ना और अच्छाई को करना इसमें तों इतना फ़र्क है कि फिर दोनों ने एक दूसरे का पल्ला छोड़ दिया और इसीलिए धर्म निष्प्राण हो जाता है और राजनीति झगड़ालू और कलहिनी हो जाती है। आज सारे संसार में सिर्फ़ हिन्दुस्तान में नहीं, सारे संसार में राजनीति कलहिनी हो रही है और धर्म निष्प्राण हो गया है। मैं अच्छे धर्म और अच्छी राजनीति की बात कर रहा हूँ। बुरा धर्म तो राजनीति यानि कलही हो गया है। और बुरी राज-नीति पानी धर्म निष्प्राण हो गया है। जो अच्छा धर्म और अच्छी राजनीति है उस का स्वरूप विकृत हो चुका है। फिर भी क्योंकि आज दुनिया में एक खराबी है इसलिए इस प्रसङ्ग को हम छोड़ दें यह अच्छा न होगा। मैं समझता हूँ, समाजवाद के पहले अंकुर को जीवित रखने की जो थोड़ी बहुत कोशिश आज हिन्दुस्तान में हो रही है वह उन लोगों के हाथों हो रही है जो आमतौर से गान्धी जी के चेले नहीं कहे जाते। शायद कभी वे सफल हो तो तब ५० बरस के बाद जो हिन्दुस्तान आएगा वह कहेगा कि उस चीज़ को न सिर्फ़ हिन्दुस्तान के जीवित रखा गया बल्कि दुनिया भर के लिए लिये समाज वाद अथवा राजनीति में आध्यात्मिकता और धर्म का क्या काम हो सकता है इसकी कुछ सफ़ाई दी गयी।"[2]

लोहिया का धर्म का दृष्टिकोण राम, कृष्ण और शिव सम्बन्धी उनके विचारों से भी प्रकट होता हैं। राम, कृष्ण और शिव सम्बन्धी उनके विचार

१. लोहिया के विचार पृ० २३।
२. लोहिया के विचार २४।

अनूठे है जिसमें उन्होंने अपने विचारों की प्रौढ़ता को अपनी लेखनी द्वारा व्यक्त किया है। लोहिया के अनुसार कृष्ण और राम का धर्म देश को एक सूत्र में बांधना था। कृष्ण ने पश्चिम से पूर्व की ओर प्रभाव बढ़ाया जबकि राम ने उत्तर से दक्षिण की ओर। कृष्ण बहुत अधिक हिन्दुस्तान के साथ जुड़ा हुआ है। हिन्दुस्तान के ज्यादातर देव और अवतार अपनी मिट्टी के साथ सने हुए हैं। मिट्टी से अलग करने पर वे बहुत कुछ निष्प्राण हो जाते हैं। त्रेता का पूर्व-पश्चिम एकता राम हिन्दुस्तान की उत्तर-दक्षिण एकता का देव है। द्वापर का कृष्ण देश की का देव है। राम उत्तर-दक्षिण और कृष्ण पूर्व-पश्चिम धुरी पर घूमे। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि देश को उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम एक करना ही राम और कृष्ण का धर्म था। यों सभी धर्मों की उत्पत्ति राजनीति से है, बिखरे हुए स्वजनों का इकट्ठा करना, कलह मिटाना, सुलह कराना और हो सके तो अपने और सब की सीमा को दहाना। साथ-साथ जीवन को कुछ ऊँचा उठाना, सदाचार की दृष्टि से और आत्म-चिन्तन की भी।"[1]

"देश की एकता और समाज के शुद्धि सम्बन्धी कारणों और आवश्कताओं से ससार के सभी महान् धर्मों की उत्पत्ति हुई है। मलवत्ता, धर्म इन आवश्यकताओं से ऊपर उठकर, मनुष्य को पूर्ण करने की भी चेष्टा करता है। किन्तु भारतीय धर्म इन आवश्यकताओं से जितना ओत-प्रोत है, उतना और कोई धर्म नहीं।"[2]

"महाभारत हिन्दुस्तान की पूर्व-पश्चिम यात्रा है, जिस तरह रामायण उत्तर दक्षिण यात्रा है। पूर्व-पश्चिम यात्रा का नायक कृष्ण है, जिस तरह उत्तर-दक्षिण यात्रा का नायक राम है। मनीपुर से द्वारिका तक कृष्ण तथा उसके सहचरों का पराक्रम हुआ है, जैसे जनकपुर से श्रीलंका तक राम का, उस के सहचरों का। राम का काम अपेक्षाकृत सहज था। कम से कम उस काम में एकरसता अधिक थी। राम का मुकाबला या दोस्ती हुई। भील, किरात, किन्नर, राक्षस इत्यादि से, जो उसकी अपनी सभ्यता से अलग थे। राम का काम था इनको अपने में शामिल करना और उनको अपनी सभ्यता में ढाल देना, चाहे हराये बिना या हराने के बाद।"

"कृष्ण का वास्ता पड़ा अपने ही लोगों से। एक ही सभ्यता के दो अंगों में से एक को लेकर भारत की पूर्व-पश्चिम एकता कृष्ण को स्थापित करनी पड़ी। इस काम में पेंच ज्यादा थे। तरह-तरह की सन्धि और विग्रह थी,

---

१. लोहिया के विचार पृ० २८४।

२. वहीं।

वैसे ही मनुष्यों के आपसी सम्बन्ध भी, खास कर मर्द औरत के। अर्जुन की मनीपुर वाली चित्रांगदा, भीम की हडिम्बा और पांचाली का तो कहना ही क्या। कृष्ण की बुआ कुन्ती का एक बेटा था अर्जुन, दूसरा कर्ण, दोनों अलग-अलग बापों से, और कृष्ण ने अर्जुन को कर्ण का छल-वध करने के लिये उकसाया। फिर भी क्यों जीवन का निचोड़ छन कर आया। क्योंकि कृष्ण जैसा निस्व मनुष्य न कभी हुआ और उससे बढ़कर तो कभी होना ही असम्भव है। राम उत्तर-दक्षिण एकता का न सिर्फ़ नायक बना, राजा भी हुआ। कृष्ण तो अपनी मुरली बजाता रहा। महाभारत की नायिका द्रौपदी से महाभारत के नायक कृष्ण ने कभी कुछ लिया नहीं, दिया ही।"

"कृष्ण है कौन ? गिरधारी, गिरधर गोपाल, वैसे तो मुरलीधर और चक्रधर भी है, लेकिन कृष्ण का गुह्यतम रूप तो गिरिधर गोपाल में ही निखरता है। कान्हा को गोवर्धन पर्वत अपनी अंगुली पर क्यों उठाना पड़ा। इसी लिये न कि उसने इन्द्र की पूजा बन्द करवादी और इन्द्र का भोग खुद खा गया, और भी खाता रहा। इन्द्र ने नाराज़ होकर पानी, ओला, पत्थर बरसाना शुरू किया। तभी तो कृष्ण को गोवर्धन उठाकर अपने गो और गोपालों की रक्षा करनी पड़ी। कृष्ण ने इन्द्र का भोग खुद क्यों खाना चाहा ? यशोदा और कृष्ण का इस सम्बन्ध में गुह्य विवाद है। माँ, इन्द्र को भोग लगाना चाहती है क्योंकि वह बड़ा देवता है, सिर्फ़ वास से ही तृप्त हो जाता है, और उसकी बड़ी शक्ति है, प्रसन्न होने पर बहुत वर देता है और नाराज़ होने पर तकलीफ़। बेटा कहता है कि वह इन्द्र से भी बड़ा देवता है; क्यों वह तो वास से तृप्त नहीं होता और बहुत खा सकता है और उसके खाने की कोई सीमा नहीं। यही है कृष्ण-लीला का गुह्य रहस्य। वास लेने वाले देवताओं से खाने वाले देवताओं तक ही भारत यात्रा ही कृष्ण-लीला है।"

"कृष्ण के पहले भारतीय देव आसमान के देवता हैं। निःसन्देह अवतार कृष्ण के पहले से शुरू हो गये। किन्तु त्रेता का राम ऐसा मनुष्य है जो निरन्तर देव बनने की कोशिश करता रहा। इसीलिये उसमें आसमान के देवता का अंश कुछ अधिक है। द्वापर का कृष्ण ऐसा देव है, जो निरन्तर मनुष्य बनने की कोशिश करता रहा। उसमें उसे सम्पूर्ण सफलता मिली। कृष्ण सम्पूर्ण और अबाध मनुष्य है। खूब खाया-खिलाया, खूब प्यार किया और प्यार सिखाया, जन-गण की रक्षा की और उसको रास्ता बताया, निर्लिप्त भोग का महान् त्यागी और योगी बना।"

"कृष्ण जो कुछ करता था जम कर करता था, खाता था जमकर, प्यार

करता था जमकर, रक्षा भी जमकर करता था, पूर्ण भोग, पूर्ण प्यार, पूर्ण रक्षा। कृष्ण की सभी क्रियाएँ उसकी शक्ति के पूरे इस्तेमाल से ओतप्रोत रहती थीं। शक्ति का कोई अंश बचाकर नहीं रखता था, कंजूस बिलकुल नहीं था, ऐसा दिलफेंक, ऐसा शरीरफेंक, चाहे मनुष्यों में सम्भव न हो लेकिन मनुष्य हो ही सकता है। मनुष्य का आदर्श, चाहे जिसके पहुँचने तक हमेशा एक सीढ़ी पहले रुक जाना पड़ता हो।······

''राम त्रेता के मीठे शान्त और सुसंस्कृत युग का देव है। कृष्ण पके, जटिल, तीखे और प्रखर बुद्धि युग का देव। राम गम्य है। कृष्ण अगम्य है।[१]·······''

"राम और कृष्ण शायद इतिहास के व्यक्ति थे और शिव भी गंगा की धारा के लिये रास्ता बनाने वाले इंजिनियर रहें हों। साथ-साथ एक अद्वितीय प्रेमी भी······"

"राम, कृष्ण और शिव भारत में पूर्णता के तीन महान् स्वप्न हैं। सब का रास्ता अलग-अलग है। राम की पूर्णता मर्यादित व्यक्तित्व में है, कृष्ण की उन्मुक्त या सम्पूर्ण व्यक्तित्व में और शिव की असीमित व्यक्तित्व में, लेकिन हर एक पूर्ण है। किसी एक का दूसरे से अधिक या कम पूर्ण होने का कोई सवाल नहीं उठता। पूर्णता में विभेद कैसे हो सकता है? पूर्णता में केवल गुण और किस्म का विभेद होता है······

"राम और कृष्ण, विष्णु के दो मनुष्य रूप है, जिनका अवतार धरती पर धर्म का नाश और अधर्म के बढ़ने पर होता है। राम धरती पर त्रेता में आये जब धर्म का रूप इतना अधिक नष्ट नही हुआ था। वह आठ कलाओं से बने थे, इसलिए मर्यादित पुरुष थे। कृष्ण द्वापर में आये जब अधर्म बढ़ती पर था। वे सोलहों कलाओं से बने हुये थे और इसीलिये एक सम्पूर्ण पुरुष थे। जब विष्णु ने कृष्ण के रूप में अवतार लिया तो स्वर्ग में उनका सिंहासन बिल्कुल सूना था। लेकिन जब राम के रूप में आये तो विष्णु अंशतः स्वर्ग में थे और अंशतः धरती पर।"

"कृष्ण सम्पूर्ण पुरुष थे। उनके चेहरे पर मुस्कान और आनन्द की छाप बराबर बनी रही और खराब से खराब हालत में भी उनकी आंखें मुस्कराती रहीं। चाहे दुःख कितना ही बड़ा क्यों न हो, कोई भी ईमानदार

---

१. लोहिया के विचार पृ० २९३

आदमी व्यस्क होने के बाद अपने पूरे जीवन में एक या दो बार से अधिक नहीं रोता। राम अपने पूरे व्यस्क जीवन में दो या शायद केवल एक बार रोये। राम और कृष्ण के देश में ऐसे लोगों की भरमार है जिनकी आँखों में बरावर आँसू डबडबाये रहते हैं और अज्ञानी लोग उन्हें बहुत ही भावुक आदमी मान बैठते हैं। एक हद तक इसमें कृष्ण का दोष है। वे कभी नहीं रोये। लेकिन लाखों को आज तक रुलाते रहे हैं। जब वे ज़िन्दा थे, वृन्दा-वन की गोपियाँ इतनी दुःखी थीं कि आज तक गीत गाये जाते है—

निसि दिन बरसत नैन हमारे।

कंचुकि पट सूखत नहिं कबहूँ उन बिच बहत पनारे।

"राम और कृष्ण" ने मानवीय जीवन बिताया लेकिन शिव बिना जन्म और बिना अन्त के हैं। ईश्वर की तरह अनन्त हैं, लेकिन ईश्वर के विपरीत उसके जीवन की घटनाएँ समय-क्रम में चलती हैं और विशेषताओं के साथ। इसलिये वे ईश्वर से भी अधिक असीमित हैं।[1]......

धर्म और राजनीति, ईश्वर और राष्ट्र या कौम हर ज़माने में और हर जगह मिल कर चलते हैं। हिन्दुस्तान में यह अधिक होता है। शिव के सबसे बड़े कारनामों में एक उनका पार्वती की मृत्यु पर शोक प्रकट करना है। मृत्यु पार्वती को अपने कन्धे पर लाद कर वे देश भर भटकते फिरे। पार्बती का अंग-अंग गिरता रहा फिर भी शिव ने अन्तिम अंग गिरने तक नहीं छोड़ा। किसी प्रेमी, देवता, असुर या किसी भी साहचर्य निभाने की ऐसी पूर्ण और अनूठी कहानी नहीं मिलती। केवल इतना ही नहीं, शिव की यह कहानी हिन्दुस्तान की अटूट और विलक्षण एकता की भी कहानी है। जहाँ पार्वती का एक अंग गिरा वहां एक तीर्थ बना। बनारस में मणिकर्णिका घाट पर मणिकुन्तल के साथ कान गिरा, जहाँ आज तक मृत व्यक्तियों को जलाए जाने पर निश्चित रूप से मुक्ति मिलने का विश्वास किया जाता है। हिन्दुस्तान के पूर्वी किनारे पर कामरूप में एक हिस्सा गिरा जिसका पवित्र आकर्षण सैंकड़ों पीढ़ियों तक चला आ रहा है और आज भी देश के भीतरी हिस्सों में बूढ़ी दादियाँ अपने बच्चों को पूरब की महिलाओं से बचने की चेतावनी देती है, क्योंकि वे पुरुषों को मोह कर भेड़ बकरी बना ऐती है।"[2]

---

१. लोहिया के विचार पृ० ३०६

२. वही।

लोहिया के अनुसार इतिहास और किंवदन्तियों में राम मर्यादित हैं जो अपने कार्यों द्वारा देव बनने की कोशिश करते हैं। वचन और कर्म के पक्के रहे। चाहै उनको इसकी कितनी ही कठिनाई उठाकर क्यों न रक्षा करनी पड़ी हो। राम का सबसे बड़ा आदर्श राजकीय मर्यादा पुरुषोत्तम वाली बात है। लोहिया राम का यह महान् गुण मानते हैं और उनसे कुछ सीखने की बातें करते हैं। "मैं समझता हूँ राजनीति में उसके जैसा संसार में और कोई आदमी नहीं हुआ है, जिसने मर्यादा को रखा ही, नीति-नियम को बरता हो, अपने को संयम में रखा हो और राजनीति चलायी हो।"[1]

कृष्ण उन्मुक्त है जो सम्पूर्ण मनुष्य बनने की कोशिश करते रहे। कृष्ण जो कुछ भी करता था जमकर करता था। उसके चेहरे पर मुस्कान और आनन्द की छाप बराबर बनी रही। ख़राब से खराब हालत में भी उस की आँखें मुस्कराती रहीं या यह कहिए वह सदा दिलबहार था। जो सबके साथ हिल-मिल कर रहा और रहना सिखाया। "कृष्ण की सब चीज़ें दो हैं, दो माँ, दो बाप, दो नगर, दो प्रेमिकायें या यों कहिये अनेक, जो चीज़ सांसारिक अर्थ में बाद की या स्वीकृत या सामाजिक है, वह असली से भी श्रेष्ठ अधिक प्रिय हो गई है। यों कृष्ण देवकीनन्दन भी है लेकिन यशोदानन्दन अधिक।"[2]

शिव एक-मात्र असीम और अनन्त व्यक्तित्व वाले हैं—"मैं व्यक्तिगत रूप से स्वयं शिव की कथा के प्रति सबसे अधिक आकर्षित रहा हूँ, शायद इसलिये कि मानव मस्तिष्क की जानकारी में वह एक-मात्र असीम व्यक्तित्व वाले हैं या इसलिए कि उनके सभी कार्यों का अपना औचित्य होता है या उन के पार्वती के साथ संबंध के असंख्य रूपों और रंगीन छवियों के कारण। स्त्री और पुरुष के बीच प्रेम की इससे अधिक भड़कीली और आकर्षक कथा मैं तो नहीं जानता। शायद यह प्रेम देवी और देवता के बीच था, पर इस से कोई अन्तर नहीं आता। स्त्री और देवी में अधिक अन्तर नही है और यदि किसी को संदेह हो तो उस काहिरा के अजायबघर में जाकर देखना चाहिये जो अतीत प्राचीन उद्वेलित कर देने वाली वस्तुओं और स्मृतियों का अतुलनीय भंडार है।"[3]

---

१. लोहिया—जाति प्रथा पृ० १६१

२. लोहिया के विचार पृ० २६८

३. लोहिया—इतिहास-चक्र पृ० ६६

अन्त में लोहिया का यही कहना है—

"राम के दो अस्तित्व हो जाते हैं, मर्यादित और संकीर्ण, कृष्ण के उन्मुक्त और क्षुद्र प्रेमी, शिव के असीमित और प्रासंगिक। मैं कोई इलाज सुझाने की धृष्टता नहीं करूँगा और केवल इतना कहूँगा! **ऐ भारत माता, हमें शिव का मस्तिष्क दो, कृष्ण का हृदय दो तथा राम का कर्म और वचन दो। हमें असीम मस्तिष्क और उन्मुक्त हृदय के साथ-साथ जीवन की मर्यादा से रचो।"**

डा० लोहिया ने भारतीय साहित्य का गम्भीरतम अध्ययन किया था। उनके विचार और विश्लेषण चमत्कार पैदा करने वाले हैं। इसीलिये मैंने उनके द्वारा व्यक्त किये गये मूल विचारों का ही कुछ अंश रखा है जिससे पाठकगण उनके अध्ययन की सीमा विचार शैली का अन्दाजा लगावें। और उसका विश्लेषण करें। यही हमारी अवधारणाएँ हैं लोहिया के धर्म के विषय में जानकारी हासिल करने की।

लोहिया का आविर्भाव ऐसे समय में हुआ था जबकि मानवता कराह रही है ऊँच-नीच की भावनाएँ आकाश चूम रही हैं। असहायों दलितों का कोई रक्षक नहीं। उनके विकास के लिए किसी योजना में स्थान नहीं। गरीबी अमीरी की सीमाओं को पाटना असम्भव प्रतीत होता रहा। दलित अपने को असहाय पाते रहे। लोहिया ने वीणा उठाली, इन्हीं दुःखों की खोज के समाधान की। दुखियों का साथ दे देने की। उनके सारे दुःखों का अपने ही कन्धे पर ढोने की। अन्याय और अत्याचार के विरोध में लड़ने की। बेसहारों को सहारा देने की। यही लोहिया का जीवन कार्य था। इसीलिए वे कहते भी हैं कि "आज मेरे पास कुछ भी नहीं है सिवाय इसके कि ग़रीब आदमी सोचता है कि मैं शायद उसका आदमी हूँ।" यही भावना लोहिया का धर्म है। उनका कर्म है। उनकी धर्म की आधारशिला है जिसको उन्होंने धारण किया। वैसे धर्म का विकास भी ऋग्वेद के 'धृ' धातु से बना है जिसका तात्पर्य है धारण करना, सहारा देना।

लोहिया का धर्म-प्रेम, सेवा सद्भावना और सहिष्णुता पर आधारित था, जिसको उन्होंने धारण किया। यहाँ उनकी एक बात याद आती है। बात अफ़ग़ानिस्तान की है। लोहिया बहुत दिनों के बिछुड़ने के बाद सीमांत गाँधी अर्थात् अब्दुल गफ़्फ़ार खां से मिलने उनके निवास स्थान पर गए। रात हो चुकी थी। सीमांत गाँधी खाना खाने जा ही रहे थे कि लोहिया उनके यहाँ

पहुँच गए। खाँ साहब ने लोहिया के आते ही उनके लिए खाना बनाने के लिए आदमी को आदेश दिया और आदमी से कहा, देखो यह हिन्दुस्तानी हैं, इनका खाना शुद्ध शाकाहारी होना चाहिए। लोहिया तुरन्त बोले, घर में क्या बना है। जवाब मिला माँस और आलू मिला हुआ सब्जी, जो तुम नहीं खा सकते। लोहिया ने सीमांत गाँधी से कहा, देखिए इसमें कोई विशेष बात नहीं है, जो हिस्सा आप का है, आप खा लें और जो हमारा है वह मैं। दुबारा बनाने की कोई ज़रूरत नहीं। अर्थात् माँस सीमांत गाँधी खाए और आलू लोहिया। लोहिया शाकाहारी थे। इसमें हमें लोहिया का प्रेम और आपसी सद्भावना की झलक साफ़ स्पष्ट होती है।

आज लोहिया हमारे बीच नहीं हैं, और न वे स्वयं हमारी कोई सहायता कर सकते हैं। पर यह कहते हमें यहाँ बुद्ध की बात याद आती है। बुद्ध जब कुशीनगर में मृत्यु शैया पर पड़े हुए थे, तब उनके शिष्य आनन्द फूट-फूट कर रोने लगे। बुद्ध को रोने की आवाज़ सुनाई दी। तत्पश्चात् बुद्ध ने अन्य लोगों से पूछा कि आनन्द क्यों रो रहे हैं। जवाब मिला तथागत आप इस संसार से जा रहे हैं इसलिए आनन्द रो रहे हैं और कह रहे हैं कि अब आगे रास्ता दिखाने वाला कौन होगा? कौन हम सब बेसहारों को सहारा देगा? बुद्ध ने आनन्द को बुलवाया और कहा कि देखो आनन्द तुम तो आज दुःखी हो क्यों कि मैं जा रहा हूँ। सोचो तुम तो इतने दिनों तक हमारे साथ-साथ रहे हो। हमारी अवधारणाओं से भली-भाँति परिचित हो। हमारे कार्य, नियम को जानते हो। भला सोचो कि जो लोग हमारे साथ नहीं रहे हैं वे कैसे आगे चलें गे। धर्म का पालन करें गे। मैं चाहता हूँ कि आज से सभी तुम अपना रास्ता खोज लो। तुम अपने सहारे हो जाओ। बुद्ध ने "आत्मदीपो भवः" 'स्वयं प्रकाश खोजो' का नारा दिया।

लोहिया की अवधारणाएँ बुद्ध के काफ़ी नज़दीक प्रतीत होती हैं। मृत्यु शैया पर पड़े रहकर अस्पताल में यह कहना कि "ग़रीबों का क्या होगा, हमारे लिए इतने डाक्टर लाखों करोड़ों के लिए कोई डाक्टर नहीं, किसानों की समस्याओं का क्या हो रहा है? आदि। यानी उनका ध्यान बराबर देश के करोड़ों जनता की स्थिति सुधारने की ओर लगा रहता था। अध्यक्ष महोदय, यह व्यवस्था का प्रश्न है? ऐसा लगता है कि वे संसद में ही बोल रहे हैं। भले ही लोहिया अचेतन में मुँह से बक रहे हों पर उनके अचेतन में भी चेतन है। यह बुद्ध के 'आत्मदीपो भव' के रूप में है। जिसके लिए प्रकाश खोजना होगा। आज हर मानवतावादी को लोहिया के इस वाक्य को ग्रहण

करना होगा और हल के लिए रास्ता ढूंढना होगा। हमें प्रसन्न होना चाहिए कि हम सब लोहिया के समय में ही उनकी अवधारणाओं से परिचित हैं। उन के जीवन कार्य-क्रम से परिचित हैं। जो कार्य-क्रम हमें आगे रास्ता दिखाता रहेगा। आज ज़रूरत है देश के नौजवान, किसान, मज़दूर, विद्यार्थी आदि को लोहिया के धर्म को धारण करने की। जिस धर्म का नाम है मानवता, उद्देश्य है समानता और अन्तिम मञ्ज़िल है—दुनिया में कोई दुःखी न रहे।

अन्तिम यात्रा

लोहिया अस्पताल में

डा० लोहिया की मौत की कहानी भी एक लम्बी संघर्ष की कहानी है। —ग़रीब बाप के बेटे राम मनोहर लोहिया ने चालीस साल तक इस देश की ग़रीबी, अशिक्षा और भुखमरी के विरुद्ध अकेले संघर्ष किया था। दस दिनों तक उन्होंने तमाम डाक्टरों के बावजूद मृत्यु से अकेले संघर्ष किया।[1] ३० सितम्बर को नई दिल्ली के विलिंग्डन अस्पताल में डाक्टर एल. आर. पाठक ने उनकी प्रोटेस्ट ग्रन्थि का औपरेशन किया था। डॉ लोहिया ने इस औपरेशन के बारे में भी अपने नज़दीक के लोगों को भी नहीं बताया था, क्योंकि उनसे कहा गया था कि यह एक बहुत मामूली औपरेशन है। लेकिन अस्पताल में भरती होने के तीसरे ही दिन यह औपरेशन घातक साबित हुआ। डॉ. लोहिया को ज्वर हो आया और उनका रक्तचाप बढ़ने से उनकी हालत बिगड़ती गई। इस अवस्था में डॉक्टरों के बीच विवाद उठ खड़ा हुआ। कुछ का ख्याल था कि यह पेचीदगी इसलिए पैदा हुई है कि डॉ. लोहिया का हृदय कमज़ोर है जब कि औरों की धारणा थी कि इस पेचीदगी का सम्बन्ध औपरेशन से है। दिन में जब हालत और बिगड़ी तो इस विवाद को समाप्त करने के लिए मेडिकल इंस्टीट्यूट के विशेषज्ञ डॉ विग को बुलाया गया। डॉ विग ने इलाज का एक रास्ता सुझाया और दूसरे दिन सबेरे तक डॉ० लोहिया की हालत में कुछ सुधार हुआ। लेकिन यह सुधार क्षणिक था। ३ तारीख की रात को डॉ० लोहिया को कँप-कँपी होने लगी। विलिंग्डन अस्पताल के डॉ. इस कँपी-कँपी का कारण समझने में असमर्थ थे। इसी बीच श्री मधुलिमये और श्री जौर्ज फनाडीस ने बम्बई के प्रसिद्ध विशेषज्ञ डॉ. कोलाबावाला और डॉ. दस्तूर को मरीज़ की परीक्षा के लिए दिल्ली बुलाया। बम्बई के डाक्टरों ने जाँच करने के बाद पाया कि डॉ० लोहिया टाक्सीमिया (रक्त में जहर) से पीड़ित हैं। उन्होंने विलिंग्डन अस्पताल में दी जा रही दवाओं के स्थान पर

---

१. १५ अक्तूबर और २२ अक्तूबर १९६७ का दिनमान देखिए।

एम्पीसिलीन का इलाज सुझाया। एम्पीसिलीन के इंजेक्शन से डॉ० लोहिया की तबीयत में कुछ सुधार हुआ। ५ अक्तूबर को डॉ० लोहिया की हालत फिर गम्भीर हो गई और संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के नेताओं ने स्थानीय इलाज पर पूरी तरह निर्भर करने के बजाए बम्बई के डाक्टरों को दुबारा बुलाना पसन्द किया। डॉ० लोहिया के इलाज के लिए लन्दन से पेरिस्टनएई और फुरादान्तिन नामक दवाएँ मंगाने की व्यवस्था की गई। इस बीच पटना, लखनऊ, बनारस, और भोपाल के डाक्टरों ने भी डॉ० लोहिया की परीक्षा की। उनके रक्त में पेशाव-कणों के बढ़ने से सबको चिन्ता होने लगी। डॉ० लोहिया को तेज़ ज्वर भी होने लगा। २ तारीख के बाद से वह बराबर अचेतनावस्था में रहे हालाँकि जनता तक बार बार यह खबर पहुँचती रही कि डॉ० लोहिया पहले से ज़्यादा होश में हैं।

७ तारीख़ को सवेरे डॉ० लोहिया की हालत में कुछ सुधार देख विलिंग्डन अस्पताल के ख़ुशमिजाज़ डाक्टरों ने यह घोषणा कर दी कि अगर यही हालत रही तो हम शीघ्र ही डॉ० लोहिया को ख़तरे से बाहर घोषित कर देंगे। उन्होंने अपनी उत्फुल्लता में रात का प्रेस सम्मेलन भी स्थगित कर दिया। जब साढ़े नौ बजे रात को दिनमान का विशेषज्ञ संवाददाता विलिंग्डन अस्पताल में पहुँचा तब उसे डॉ० लोहिया की देख रेख कर रहे एक नौजवान डॉ० ने बताया कि डॉ० लोहिया की हालत ठीक है, उन्हें करीब ९९ डिग्री बुखार है। मगर इसके दो ही मिनट बाद संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के नेताओं से संवाददाता को मालूम हुआ कि डॉ० लोहिया को १०२ डिग्री बुखार है और उनकी हालत बहुत ही बिगडी हुई है, जिसका पता हो सकता है डाक्टरों को न हो। उसके बाद से डॉ० लोहिया की हालत में कोई सुधार नहीं हुआ। तब श्री मधुलिमये ने लन्दन के विशेषज्ञ डॉ० रिचेज से फोन पर सम्पर्क किया जिन्होंने यह कहा कि मुझे पूरा शक है कि डॉ० लोहिया की सारी गड़बड़ी ऑपरेशन के समय से ही शुरू हुई है। उन्होंने कहा कि मेरे ख्याल में ऑपरेशन की जगह पर घाव हो चुका है। उपप्रधानमन्त्री श्री मोरार जी देसाई के आग्रह पर बम्बई से आए मशहूर सर्जन डॉ० शान्तिलाल मेहता ने भी इस धारणा की पुष्टि की कि डॉ० लोहिया के ऑपरेशन-स्थल पर घाव हो चुका है। उन्होंने विलिंग्डन अस्पताल में डॉक्टरों के विरोध के बावज़ूद डॉ० लोहिया के टाँके तोड़े और घाव से सारा पीव निकाला। लुधियाना के अमरीकी सर्जन डॉ डेविड ने इसके दूसरे दिन रक्तचाप के लिए उनके गले के पास की स्नायु खोली। १० तारीख़ को जर्मनी से डॉ० एलकेन को बुलाया गया। उन्होंने

भी डॉ० महता और डॉ० डेविड के इलाज को सही ठहराया, लेकिन डॉ० लोहिया के शरीर में इतनी पेचीदगियाँ पैदा हो चुकी थीं कि हर इलाज नाकाम साबित होता रहा। डॉ० लोहिया अपनी अदम्य जीवन-शक्ति के बल पर मृत्यु से लोहा लेते रहे। बाद में नई खोज यह हुई कि डॉ० लोहिया की प्रोस्टेट ग्रन्थि में कैंसर था। जर्मनी के डाक्टर ने इस संवाददाता को बताया कि इस तरह का कैंसर का कारगर अन्तर्राष्ट्रीय इलाज उपलब्ध है अगर डॉ० लोहिया मौजूदा संकट से उभर गए तो कैंसर के लिए विशेष चिन्ता की आवश्यकता नहीं।

डा० लोहिया के लिए रक्तदान

हाल के इतिहास में किसी एक आदमी के जीवन के लिए इतनी प्रार्थनाएँ नहीं की गईं जितनी कि दस दिनों से डॉ० राममनोहर लोहिया के लिए की गईं। नई दिल्ली का विलिंग्डन अस्पताल देश की चिन्ता और बेचैनी का केन्द्र बना हुआ था। हर दिन करीब दो हज़ार लोग डॉ० लोहिया के दर्शन के लिए विलिंग्डन अस्पताल आते रहे। क्योंकि लोहिया की हालत अत्यन्त चिन्ताजनक थी। डाक्टरों ने मिलने की सख्त मनाही कर दी थी। डॉ० लोहिया पूरी तरह अचेत थे। बीच-बीच में क्षण क्षण दो दो क्षण के लिए होश में आते। परिचितों और अपरिचितों को पहचानने की कोशिश करते हैं। जब श्रीमती इन्दिरा गाँधी उन्हें देखने आईं तो वे होश में थे। उन्हें देखकर उन्होंने कहा—इनको बिठाओ और इनकी खातिरदारी करो। एक दूसरे मौके पर डाक्टरों से अपने को घिरा हुआ पाकर वह भुनभुनाये—'इस देश में राजनीति और डाक्टर दोनों का एक हाल है।' अचेतनावस्था में वह जर्मन, बंगला और हिन्दी में प्रलाप करते हैं। उनका ख़ास एक वाक्य अक्सर सुनाई पड़ता है: रज़िया को रानी ने मारा।

डॉ० लोहिया को देखने आने वालों में राष्ट्रपति से लेकर साधारण रिक्शेवाले भी शामिल थे; लेकिन इन सब में ख़ास था फटे चीथड़ों में आया एक आदमी जिसने यह कहकर धरणा दिया कि जब तक मुझे डाक्टर लोहिया से मिलने नहीं दिया जाएगा मैं वापिस नहीं जाऊँगा। उसने बताया कि तिहाड़ जेल में डॉ० लोहिया के साथ था। वह गैरराजनीति अपराध में जेल गया था। एक दूसरे वह दिलचस्प मुलाकाती थे शेख़ अब्दुल्ला, जो पुलिस कांस्टेबुलों और सी. आई. डी. के लोगों से घिरे हुए अस्पताल में आये। जब इनका वहाँ परिचय बिहार के पुलिस मन्त्री श्री रामानन्द तिवारी से कराया

गया, तब उन्होंने मुस्कराते हुए कहा, 'पुलिस-मन्त्रियों और गृह-मन्त्रियों से मैं बहुत डरता हूँ।' रीवाँ से आयी हुई एक स्त्री डॉ० लोहिया के लिए चौबीस घंटे प्रार्थनाएँ करती रही। एक दूसरी ग़रीब औरत ने कई दिनों से व्रत रखा था। डॉ० लोहिया को दस दिनों से बराबर रक्त दिया जाता रहा। जब रक्त की कमी पड़ती तो करीब डेढ़ सौ व्यक्तियों ने जिनमें से अधिकतर का ताल्लुक किसी भी पार्टी की राजनीति से नहीं था, डॉ० लोहिया को रक्त देने के लिए अपना नाम दर्ज कराया। इनमें से तीस व्यक्तियों का रक्त लिया गया।

अन्तिम क्षण

बुधवार ११ तारीख की रात को साढ़े नौ बजे विलिंग्डन अस्पताल में मेडिकल सुपरिण्टैण्डैण्ट ब्रिगेडियर लाल ने डॉ० लोहिया के मुलाकातियों और संवाददाताओं को अपने कमरे में प्रसन्नचित्त यह बताया था कि आप लोग आज की रात चैन से सो सकते हैं। तत्काल चिंता का कोई कारण नहीं है— डॉ० लोहिया की हालत में कल शाम से जो गिरावट थी उसे हमने रोक दिया है। पिछली कई रातों से डॉ० लोहिया के शुभेच्छुक और संसोपा के नेता बराबर जाग रहे थे। डॉ० लाल के आश्वासन पर उनमें से अधिकतर अपने-अपने घरों को चले गए। कुछ कार्यकर्ता और दीनमान का विशेष संवाददाता रात देर तक अस्पताल में रुक गए थे। अभी डॉ० लाल के आश्वासन के बावजूद दिल्ली की जनता को नींद भी नहीं आई थी कि डॉ० लोहिया की हालत बिगड़ने लगी।

करीब सवा बारह बजे रात को उनकी तबीयत में गिरावट हुई। रक्त-चाप लगातार गिरने लगा और अस्पताल में भागदौड़ मची। डाक्टरों को बुलाया जाने लगा। दिल्ली में मौजूद डॉ० लोहिया के सभी चिकित्सक मिनटों में आ पहुँचे। नाड़ी बन्द हो चली थी और रक्तचाप ४० के करीब पहुँच गया था। हृदय की गति मन्द होने लगी थी। डाक्टरों ने हृदय को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न किया, लेकिन होनी हो कर रही। रात को एक बज कर पाँच मिनट पर डाक्टर मरीज़ के कमरे से बाहर निकले और उन्होंने लोगों को बताया कि डॉ० लोहिया अब इस संसार में नहीं रहे। यह सुनते ही वहाँ मौजूद लोग अवाक् हो गए। कुछ क्षण के लिए अपनी सारी सुध-बुध खो बैठे। डॉ० लोहिया के अन्तिम समय में उनके बहुत नज़दीक के सहयोगी और प्रियजन उपस्थित थे, जिनमें मुख्य हैं श्रीमती रमा मित्र, श्री किशन पटनायक, श्री विनयकुमार, श्री रामसेवक यादव और श्री कृष्णनाथ।

सोते को जगाने वाला पहरुआ स्वयं सो गया

अपने आदर्शों को लेकर किसी से भी समझौता न करने वाला, अकेला चलो का नायक, सोते को जगाने वाला पहरुआ स्वयं सो गया। भारतीय समाजवादी राजनीति को रोशनी देने वाली ज्योति सो गयी। भारतीय राजनीति का एक गौरवपूर्ण अध्याय समाप्त हो गया।

डॉ० लोहिया के निधन का समाचार तुरन्त ही फैल गया और मन्त्री, नेता और कार्यकर्त्ता विलिंग्डन अस्पताल के प्रांगण में पहुँचने लगे। सबसे पहले पहुँचने वालों में थे श्री मोरार जी देसाई, श्री जयप्रकाश नारायण तथा उन की धर्मपत्नी श्रीमती प्रभावती देवी। डॉ लोहिया का शव चादर से ढक दिया गया और एम्बुलैंस में रात के दो बजे उसे उनके निवास स्थान गुरुद्वारा रकाबगंज रोड पर ले जाया गया। उनके निवास-स्थान पर उनके ड्राइंग रूम में, जहाँ वे अपने खास मुलाकातियों से मिला करते थे, एक चौकी पर यह शव रखा गया। डॉ० लोहिया के ढके हुए चेहरे पर हल्की मुस्कान की रेखा थी, जैसे उन्होंने नियति के व्यंग्य को हमेशा की तरह अपनी मृत्यु के पहले ही पहचान लिया हो। मरने के तीन रोज़ पहले उन्होंने डाक्टरों से कहा भी था कि अपने देश में राजनीतिज्ञ और डाक्टर दोनों अज्ञानी हैं।

मृत्यु का समाचार मिलने पर डॉ० लोहिया के दर्शनार्थियों की भीड़ इकट्ठी होने लगी। श्री और श्रीमती जयप्रकाशनारायण के इलावा रात के तीन बजे आचार्य कृपलानी, श्रीमती सुचेता कृपलानी, केरल के मुख्य-मन्त्री श्री नम्बूदरीपाद बिहार के उप-मुख्य-मन्त्री श्री कर्पूरी ठाकुर, संसद् सदस्य श्री उमानाथ और श्री गोपालन, श्रीमती अरुणा आसफ़ अली, श्री गंगा शरण सिंह, श्री कृष्ण मेनन, श्रीमधुलिमये, श्रीधर महादेव जोशी, श्री राज नारायण, श्री जे. एच. पटेल, श्री वा श्रीमती तुलसी वोडा तथा अन्य अनेक नेता और कार्यकर्त्ता डॉ० लोहिया के उस बरामदे में दुःखी और उदास बैठे हुए थे जहाँ अक्सर ही वे अपने दिवंगत नेता के साथ विचार-विमर्श किया करते थे। सुबह होते-होते यह भीड़ इतनी बढ़ गई कि ७, गुरुद्वारा रकाबगंज रोड का सारा मैदान और पड़ोस दुःखी मानव-चेहरों से घिर गया। अजीब दृश्य था। बहुत से स्त्री-पुरुष ज़ोरों से चीत्कार कर रो रहे थे। जिस स्थान पर सभी डॉ० लोहिया से मिलकर ख़ुश होते थे वहीं आज चारों तरफ़ सन्नाटा और मौन दृश्य था। लगता डॉ० लोहिया के बग़ीचे के पेड़ों और पौधों ने भी जैसे अपने सिर झुका लिये। जो गली अक्सर सूनी रहती थी उस में कारों, स्कूटरों, साइकिलों और हज़ारों की तादाद में पैदल चलने वालों की भीड़ इतनी

अधिक हो गईं थी कि सारे इलाके को ढक लिया। तमाम लोगों के चेहरों पर गहरा शोक था। कोई किसी कोने में और कोई किसी कोने में अकेला बैठा हुआ रो रहा था। कितने लोग बेहोश और मूर्छित हो रहे थे। प्रेस फोटोग्राफ़र, टेलीविज़न और फ़िल्म्ज़ डिवीजन के लोग इन सभी दुःख-विह्वल लोगों की छवियाँ आंकने में व्यस्त थे और डॉ० लोहिया का शव फूलों से ढक रहा था।

डॉ० लोहिया के शव पर राजनैतिक मिशनरियों की तरफ़ से फूल चढ़ाए गए। जर्मनी दूतावास की ओर से एक विशेष प्रतिनिधि फूल चढ़ाने आए।

सारे काश्मीर का सलाम :—

राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति के इलावा भारत की सभी राजनैतिक पार्टियों की ओर से उनके शव पर पुष्पांजलियाँ अर्पित की गईं। दिन के बारह बजे तक उनका शव फूलों से इतना अधिक ढक गया कि कुछ भी देख सकना सम्भव नहीं था। तमाम फूलों की श्रद्धांजलियों के बीच कभी-कभी डा० लोहिया का मुस्कराता हुआ चेहरा झाँक उठता था। जैसे ही इस चेहरे की एक झलक दिखाई पड़ती थी लोग फूट-फूट कर रो पड़ते थे। श्रद्धांजलियों और प्रेमांजलियों की इस भीड़ में मन्त्रियों और राजनेताओं ने साधारण आदमियों की तरह पैदल आकर उन्हें अन्तिम नमस्कार किया। मोरार जी देसाई, यशवन्त राव चौहान, डा० चन्द्रशेखर, डा० त्रिगुण सेन, अशोक मेहता, डा० रामसुभग सिंह, विहार के मुख्य मन्त्री महामाया प्रसाद सिंह, उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री चरण सिंह तथा अन्य अनेक मन्त्रियों ने, जो कि अक्सर राम-मनोहर लोहिया के आक्रमणों को झेलते थे, उनके शव की मौन परिक्रमा की। डा० लोहिया को प्रणाम करने वालों में दो ऐसे नेता थे जिन्हें बरसों से साक्षात्कार नहीं हुआ था। एक थे शेख अब्दुल्ला, जिसकी आँखें आँसुओं से भरी हुई थीं और दूसरे थे कांग्रेस अध्यक्ष श्री कामराज जो डा० लोहिया के बंगले पर पहली बार गए थे। शेख अब्दुल्ला ने अतिथि-पुस्तिका में लिखा 'सारे काश्मीर का सलाम'।

अर्थी के कन्धे

इधर लोग डा० लोहिया के अन्तिम दर्शन कर रहे थे और उधर से सौ गज़ राष्ट्रपति भवन के पीछे से एक पुराने गिरजे के नज़दीक डा० लोहिया के अन्तिम यात्रा के लिए ट्रक फूलों और संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी की पताकाओं से सजाया जा रहा था। करीब दो बजे डा० लोहिया का शव अर्थी पर बाहर

निकाला गया। अर्थी को अपने कन्धे पर लिए हुए थे श्री मोरार जी देसाई, श्री यशवन्त राव चौहान, श्री राम सेवक यादव, श्री जगदीश जोशी, आचार्य कृपलानी, मनीराम वागड़ी और डा० लोहिया के सबसे नज़दीक मित्र श्री बालकृष्ण गुप्त, जो पिछले बयालीस वर्षों से उनके सबसे आत्मीय क्षणों के साथी थे। जैसे ही अर्थी बाहर आयी सारी भीड़ दु:ख कातर होकर रो पड़ी। यह शव न किसी मन्त्री का था और न किसी सत्ताधारी का; लेकिन डा० लोहिया के लिए जितने आँसू बरसाए गए वे किसी भी व्यक्ति की स्मृति को अनन्त काल तक सजाये रखने के लिए काफ़ी थे। शव के बाहर निकलते ही ७, गुरुद्वारा रकाबगंज रोड उजड़ गया। जहाँ डा० लोहिया का उत्फुल्ल चेहरा नज़र आता था वहाँ अजीब किस्म की मनहूसी ने घर बना लिया।

डा० लोहिया का शव ट्रक पर एक ऊँचे आसन पर रखा गया। दो-पहर सवा दो बजे डा० लोहिया की शव-यात्रा शुरू हुई। गुरुद्वारा रकाबगंज की गली में धूल उड़ने लगी और लोगों की आँखें आँसुओं में गीली होने लगी। शव-यात्रा पार्लियामेंण्ट स्ट्रीट से होती हुई कनाट प्लेस पहुँची। पार्लियामेंण्ट स्ट्रीट के चौड़े रास्ते को जलूस ने मढ़ दिया था। इस रास्ते ने बहुत से प्रधान-मन्त्रिओं, राजनेताओं, सम्राज्ञियों और सम्राटों का स्वागत किया है और दोनों ओर खड़ी जनता ने तालियाँ बजाकर उनका अभिनन्दन किया है। लेकिन १२ अक्तूबर को इस विशाल मार्ग ने अपने इतिहास में पहली बार मौन हो कर एक ऐसे नेता का अभिनन्दन किया जो न सम्राट् था, न प्रधानमन्त्री, लेकिन इतिहास में जिसकी कोई मिसाल नहीं।

जलूस पार्लियामेंण्ट को पार कर कनाट प्लेस में जनता कॉफी हाउस के नज़दीक पहुँचा, जहाँ डा० लोहिया अपने दोस्तों के साथ अकसर बैठ कर कॉफ़ी पिया करते थे। कॉफ़ी हाउस के सामने जलूस क्षण भर के लिए रुका। कॉफ़ी हाउस के मज़दूरों और रोजमर्रा आने वालों ने डॉ० लोहिया के शव पर पुष्पांजलियाँ अर्पित कीं और समूचे कॉफ़ी हाउस ने खड़े होकर मौन रह कर उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की। कनाट प्लेस में भीड़ और बढ़ गई। सारे कनाट प्लेस की दुकानें बन्द थीं और लोग छतों पर खड़े होकर अपने नेता के अन्तिम दर्शन करने का प्रयत्न कर रहे थे। कनाट प्लेस से निकल कर जुलूस बाराखम्भा रोड पहुँचा, जहाँ रास्ते के दोनों ओर खड़े हुए स्त्री-पुरुषों ने उन्हें प्रणाम किया। साधारणतया इस रास्ते पर दिल्ली की फ़ैशने-बल बस्ती से आने जाने वाली गाड़ियों की भीड़ होती है। इसी का ख्याल रखकर सरकार ने अपनी ओर से विशेष ट्रैफिक पुलिस का इन्तज़ाम भी कर

लिया था। लेकिन पुलिस की कोई जरूरत नहीं पड़ी। ग़रीब और अमीर दोनों तरह की गाडियों ने अपने-आप रास्ता छोड़ दिया और डा० लोहिया का दिग्विजयी रथ विजय घाट की ओर निर्बाध बढ़ता गया। तिलक ब्रिज के चौराहे पर सभी ओर से आने वाली मोटर गाड़ियाँ रुकी हुई थीं। इनमें से एक गाड़ी राष्ट्रपति भवन की भी थी, जो कि डा० लोहिया के प्रति विशेष सम्मान प्रगट करने के लिए आई हुई थी।

तिलक ब्रिज से थोड़ी दूर लोकमान्य तिलक की प्रतिमा है। अभी १ अगस्त को लोकमान्य तिलक को श्रद्धांजलि देते हुए गृह-मन्त्री चौहान ने डा० लोहिया को, जो कि वहाँ मौजूद थे, अपना सिपहसालार और नेता सम्बोधित किया था। जुलूस जैसे ही तिलक ब्रिज के नीचे से निकला, आसमान पर एक विमान मँडराता हुआ आया और उसने डा० लोहिया के शव पर फूल बरसाये। विमान के फूलों को स्वीकार करती हुई डा० लोहिया की अर्थी इन्द्रप्रस्थ मार्ग से होकर प्रसिद्ध रिंग रोड पर पहुँची, जहाँ से लेकर ग़रीब और अमीर दोनों की अपनी अन्तिम यात्रा करनी होती है। इसी रास्ते से १९४८ में महात्मा गांधी का रथ गुज़रा था और इसी पथ से १९६४ में श्री नेहरू और १९६५ में श्री लालबहादुर शास्त्री ने अपनी अन्तिम यात्रा तय की थी। लम्बी और दूर तक चली गई रिंग रोड पर जगह जगह बसें लारियाँ और मोटर गाड़ियाँ रुकी हुई थीं, जिनमें से लोग उतर-उतर कर डा० लोहिया की शव-यात्रा में शामिल हो रहे थे। दिल्ली में उपस्थित सभी संसद् सदस्यों के इलावा डा० राम सुभगसिंह और अनेक अन्य मन्त्री यात्रा में शामिल थे।

विद्युत् दाह

रिंग रोड के किनारे जमुना के कछार में, महात्मा गाँधी जी, नेहरू और श्री लालबहादुर शास्त्री की समाधियाँ हैं। इन तीनों समाधियों से होकर गुजरने पर विद्युत्-शव-दाह-गृह है, जहाँ ग़रीब अन्ध आस्था से मुक्त लोग शव दाह करने आते हैं। तीन घंटों की यात्रा समाप्त कर डा० लोहिया की अर्थी शाम को पाँच बजे विद्युत् शव-दाह-गृह पर पहुँची। श्मशान पर पहले से ही भीड़ इकट्ठी थी। श्मशान से दो ढाई मील दूर के स्थान में दशहरा मनाया जा रहा था, जिसके पटाखे यहाँ तक सुनाई पड़ते, लेकिन इन पटाखों की आवाज़ धीमी और बेसुरी मालूम पड़ती थी। डा० लोहिया का शव ट्रक से उतारा गया और विद्युत्-शव-दाह-गृह के बरामदे में एक ऊँचे आसन पर रख दिया गया, ताकि सभी लोग उनके दर्शन कर सकें, और उन्हें पुष्पांजलि दे सकें। अपने नेता का आख़िरी दर्शन करने के लिए भीड़ बेचैन हो रही थी

ग्रौर ग्रनुशासन का बाँध टूटने लगा था। लेकिन संयुक्त शोशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताग्रों के ग्रनुरोध पर भीड़ फिर संयत हो गई ग्रौर एक के बाद एक सभी राजनैतिक पार्टियों की ग्रोर से उनके शव पर फूल चढ़ाए जाने लगे। शव फूलों से फिर लद गया। इसके बाद जनता को बताया गया कि उनका शव दाह के लिए भीतर ले जाया जायेगा। कुछ ही क्षणों में डा० लोहिया का शव विद्युत् दाह-गृह के ग्रन्दर चला गया। दरवाज़े बन्द हुए ग्रौर एक लपट सी निकली, जिसने डा० लोहिया के शरीर को ग्रात्मसात् कर लिया। लोक-सभा के सदस्य श्री संजीवा रेड्डी के शब्दों में 'जो ग्रादमी समूची सलतनत को ग्राग लगाने की क्षमता रखता था ग्राज ग्रग्नि ने उसे ग्रपना ग्रास बना लिया।"

ज्योति को प्रणाम

विद्युत्-शव-दाह-गृह के मैदान पर उमड़ रही भीड़ को सम्बोधित करते हुए ग्रनेक राजनेताग्रों ने डा० लोहिया को हार्दिक श्रद्धांजलियाँ ग्रर्पित कीं। संयुक्त शोसलिस्ट पार्टी के ग्रध्यक्ष श्रीधर महादेव जोशी ने डा० लोहिया को 'ग्रपना भाई ग्रौर नेता' कहकर पुकारा। उन्होंने कहा—डा० लोहिया एक दल के नेता नहीं थे, बल्कि समूचे देश के नेता थे। उनकी मान्यता थी कि जो देश के हितों के विरुद्ध है वह ग्रपने दल के हितों के भी विरुद्ध है। जब जयप्रकाश नारायण बोलने को उठे तो उनका कंठ रुँधा हुग्रा था। करीब दो मिनट तक वे बोल ही नहीं पाए। उनकी ग्राँखों से ग्राँसुग्रों की धारा बहती रही। फिर किसी तरह ग्रपने को संयत करने का प्रयत्न करते हुए भराये गले से उन्होंने कहा—राममनोहर हमसे ग्राठ वर्ष छोटे थे।

उचित तो होता कि यहाँ वह मेरी जगह पर होते ग्रौर मैं उनकी जगह पर होता, लेकिन परमात्मा को यह स्वीकार नहीं था। राम मनोहर का सारा जीवन ग्रापके सामने ग्रौर दुनियाँ के सामने एक खुली हुई किताब है। ऐसा त्यागी ग्रौर बलिदानी जीवन किसी ही किसी को मिलता है। वे ग्राज़ादी की लड़ाई के नौजवान सिपाही थे—उसमें उनके करतब इतिहास में ग्रमिट हैं। वह पहले नेता थे जिन्होंने ग्राज़ादी के बाद भारत के भावी स्वरूप की कल्पना की। उन्होंने समाजवादी ग्रान्दोलन को बल दिया, विप्लव दिया, ग्रांधी दी। उन्होंने भारत के समाजवादी ग्रान्दोलन को प्रतिष्ठित किया। वह ग़रीबों के मसीहा तो थे ही, भारत की परिस्थितियों के ग्रनुकूल उन्होंने सामाजिक विषमता को समाप्त करने के लिए भी ग्रपना बलिदान किया।

आज यह सारा संघर्षमय जीवन नहीं रहा। भविष्य द्रष्टा डा० लोहिया ने १० साल पहले ही समझ मिया था कि हिन्दुस्तान किधर जा रहा है। उन्हों ने जो तस्वीर खींची थी वह कितनी सच्ची थी, इसका परिमाण भारत की चौथा आम चुनाव है, जो लोहिया की एक क्रान्तिकारी यादगार है। इस ज्योति-पुंज, इस अद्वितीय प्रतिमा, इस विप्लव कारी आत्मा को प्रणाम।'

क्रुद्ध नवयुवक लोहिया :—

श्री जयप्रकाश नारायण के बाद श्री नीलम संजीव रेड्डी ने डॉ० लोहिया को प्रणाम करते हुए कहा कि इस देश में अनेक नेता हुए, लेकिन लोहिया केवल एक हुआ। कांग्रेस अध्यक्ष कामराज ने उन्हें ग़रीबों और कुचले हुए लोगों के नेता के रूप में स्मरण किया। गृह-मन्त्री चौहान ने भी उन्हें पद दलितों का प्रवक्ता बताया। उन्हों ने कहा कि डॉ० लोहिया भारतीय राजनीति के क्रुद्ध नवयुवक थे, लेलिन उनका क्रोध व्यक्तिगत द्वेष पर आधारित नहीं था। उस के पीछे वह करुणा थी जो देश के ग़रीब लोगों के प्रति संवेदन-शील लोगों के मन में पैदा होती है। संसद् में हम उन के क्रोध को सहन करते थे। कर्त्तव्य-वश उन का उत्तर भी देना पड़ता था। अब ख्याल आयेगा कि वह दबंग आवाज़ कहाँ है। संसद् में एक सीट खाली रहे गी, जो दिल को चुभेगी लोक-सभा उन के बिना सुनी रहेगी।

वह हँसता हुआ चेहरा :—

कम्युनिस्ट पार्टी के प्रवक्ता श्री हीरेन मुखर्जी ने डॉ० लोहिया के चारित्रिक और बौद्धिक गुणों का स्मरण किया। उन्हों ने कहा डॉ० लोहिया भारतीय राजनीति के सब से विवादास्पद व्यक्ति थे—मगर इस से क्या फ़र्क पड़ता है ? उन का उज्ज्वल चरित्र, उन की मेधावी प्रतिभा और उनकी भीतर की आग, ये सब ऐसी चीज़ें हैं जो एक असाधारण व्यक्ति में होती हैं। उन के निधन से आज सारा देश शोक में डूब गया। डॉ० लोहिया की एक पुरानी सहयोगिनी श्रीमती अरुणा आसफ़ अली दुःखी मन से डॉ० लोहिया को अंतिम नमस्कार किया। उन्होंने सन् ४२ के दिनों की याद ताज़ी करते हुए कहा कि डॉ० लोहिया का हँसता हुआ चेहरा कभी नहीं भुलाया जा सकता। आज हमारे लम्बे सफ़र के साथी राम मनोहर, जो कि तमाम देशवाशियों के बीच अडिग रहना चाहते थे, नहीं रहे। मुड़ कर देखने से आज मैं पाती हूँ कि डॉ० लोहिया के आदर्शों से हमारा कभी कोई मत-भेद नहीं रहा। आज भारत

के तमाम उन घरों में अंधेरा है जहाँ राम मनोहर लोहिया की आवाज़ गूँजती थी। उन का गुस्सा उन की झुंझलाहट कभी नहीं भूलेगी। वयोवृद्ध आचार्य कृपलानी ने डॉ० लोहिया को अपने परिवार का एक सदस्य सम्बोधित करते हुए कहा कि आज मैं अकेला हो गया हूँ। लोहिया की वाणी में गुस्सा था; लेकिन यह गुस्सा अकारण नहीं था। डॉ० लोहिया में जितना आवेश था उतनी ही कोमलता थी। उन के कोमल स्वभाव को हम लोग समझते थे। श्रीमती डा० तारकेश्वरी सिन्हा ने डा० लोहिया को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए अनेक मधुर स्मृतियाँ ताज़ी कर दीं लोकसभा में उनके साथ डा० लोहिया की मीठी झँड़पें बराबर हुआ करती थीं। श्रीमती सिन्हा ने इन सबको स्मरण करते हुए कहा कि न केवल लोकसभा बल्कि सारा देश आज सूना लगता है।

लीलामय जीवन खतम हुआ :—

इन तमाम श्रद्धांजलियों का सिलसिला समाप्त होने से पहले ही डा० लोहिया का इहलौकिक शरीर अग्नि में स्वाहा हो चुका था। दूर जमना पर आती हुई एक नाव नज़र आई जिस में लेकर डा० लोहिया की भष्म अनन्त काल से बहती आयी पवित्र सरिता में अनन्त काल के लिए प्रवाहित कर दी गई। भारतीय इतिहास के विलक्षण इतिहास-पुरुष राम मनोहर लोहिया का यह लीलामय जीवन समाप्त हो गया जो सत्ताधारियों को बेचैन करता था। शोषितों और पीड़ितों को हौंसला देता था, बुद्धिजीवियों को आकर्षित करता था, और देश की बेज़ुबान जनता को वाणी देता था।

देश के नेताओं की दृष्टि में डा० लोहिया

डा० लोहिया के निधन पर अपना दुःख प्रकट करते हुये राष्ट्रपति डा० ज़ाकिर हुसैन ने अपने शोक-सन्देश में कहा "उनकी मृत्यु से राष्ट्र की अपूरणीय क्षति हुई है, महान् देश-भक्त, आदर्शवादी और जीवनपर्यन्त विद्रोही डा० लोहिया ने अपना सम्पूर्ण जीवन समाज के दलित वर्ग के लिये समर्पित कर दिया था। उनके जीवन व्यक्तित्व के पर्यवसान से देश के सार्वजनिक जीवन में एक गहरा अभाव हो जाये गा। आजीवन महान् योद्धा के रूप में काम करते हुए उन्हों ने मृत्यु से भी बहादुरी से संघर्ष किया, किन्तु अन्ततः काल पर किसी का बस नहीं चलता।"

महान् विचारक—

भूतपूर्व राष्ट्रपति और प्रसिद्ध दर्शनशास्त्र के विद्वान् डॉ० सर्वपल्ली राधा कृष्णन् ने शोक प्रकट करते हुये कहा "डाक्टर लोहिया के देहावसान से भारत अत्यधिक आकर्षक व्यक्तित्व से रहित हो गया। वे सुनिश्चित विचार वाले व्यक्ति थे और अपने विचारों पर सर्वथा निःस्वार्थ भाव से अडिग थे। उन्हें अपने अनुयायियों की न केवल अस्था, बल्कि प्यार भी प्राप्त था। वे ऐसे विशिष्ट नेता थे, जिन के स्थान की पूर्ति कठिन है।

असामयिक मृत्यु

उप-राष्ट्रपति श्री वी० वी० गिरि ने कहा कि ऐसी घड़ी में डा० लोहिया का असामयिक निधन देश के लिए महान् क्षति है। उन की देश-भक्ति, सेवा-परायणता, त्याग की भावना और निःस्वार्थता असंदिग्ध थी। आदर्श समाज-वादी राज्य की स्थापना में विश्वास करने वाले राष्ट्रपिता द्वारा बताबे गये सिद्धान्तों के अनुसार लोकतंत्री समाजवाद का निर्माण कर डा० लोहिया का उचित स्मारक खड़ा करेंगे।

भारत की प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गान्धी ने डा० लोहिया की मृत्यु का संवाद पाकर बेलग्रेड से शोक-संदेश भेजा। उन्हों ने कहा, "यह संवाद सुन कर मुझे बड़ा दुःख हुआ। डा० लोहिया ने भारत के स्वाधीनता आन्दो लन के समय बड़ा काम किया था और स्वाधीनता प्राप्ति के बाद से देश की जनता के लिये वे सदैव कार्य करते रहे।"

संयुक्त-राष्ट्र-स्थित भारतीय प्रतिनिधि-मण्डल ने भी लोहिया के निधन पर शोक संदेश भेजा। संदेश में कहा, 'भारतीय-प्रतिनिधि-मण्डल के सदस्यों को डा० लोहिया के निधन का समाचार सुन कर भारी दुःख हुआ। वह एक भारी प्रतिभा वाले व्यक्ति तथा संसद् के वरिष्ठ सदस्य थे। उनके निधन से राष्ट्र को भारी क्षति पहुँची है।

आकाशवाणी के लोहिया-श्रद्धांजलि कार्य-क्रम में भाग लेते हुये उप-प्रधान मन्त्री श्री मुरारजी देसाई ने कहा "लोहिया की दूर-दर्शिता की सर्वाधिक अपेक्षा थी। मैं श्री लोहिया की स्पष्टवादिता और आत्मबल का शुरू से ही प्रशंसक था। वे ऐसे समय उठ गये जब राष्ट्रहित कार्यों में उन की बुद्धिमत्ता और सूझ-बुझ की बड़ी आवश्यकता थी। वे ग़रीबों के हमदर्द तथा समाज में समानता के प्रबल हिमायती थे। मैं अनेक वर्षों से जानता था लेकिन संसद्

में आने के बाद ही पूरा उनसे निकट संबंध हुआ। हमेशा मेरी यही धारणा रही कि डा० लोहिया ऐसे आदर्शवादी थे जो पूरी तरह से भारत के पुनर्निर्माण के आदर्शों के प्रति समर्पित थे। देश को ऐसे नेता और जनसेवक की हानि पहुँची है, जिन की देश और अपने सिद्धान्तो के प्रति निष्ठा संदेह से परे है।"

मुख्य-मन्त्रियों की श्रद्धांजलियां

गोवा के मुख्य मन्त्री दयानंद बी० बांदोडकर ने कहा कि डा० लोहिया की मृत्यु से हम गोआवासियों ने न केवल एक महान् मित्र, बल्कि १९४५ में गोआ के मुक्ति संघर्ष में भाग लेने वाले महान् राष्ट्रीय नेता को खो दिया है।

बिहार के मुख्यमन्त्री महामाया बाबू ने डा० लोहिया को देश-भक्तों के बीच एक राजकुमार बताया और कहा कि उन्होंने अनेक सामाजिक बुराईयों के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ किया हुआ था। उन में एक महिला जैसी कोमलता थी, और एक नायक जैसा आवेग। वे एक उच्च कोटि के विद्वान् और विशाल-हृदय व्यक्ति थे।

पश्चिमी बंगाल के मुख्यमन्त्री श्री अजय मुखर्जी ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये कहा कि डा० लोहिया की मृत्यु से देश ने एक महान् प्रतिभाशाली समाजपादी, एक योग्य संसद्विज्ञ तथा स्वतन्त्रता और मानमीय अधिकारों का महान सेनानी खो दिया।

भू०पू० मध्यप्रदेश के मुख्यमन्त्री श्री द्वारका प्रसाद मिश्र ने कहा कि डा० लोहिया कीं मृत्यु से भारतीय राजनीति का एक रंगीला व्यक्तित्व चला गया। उन का क्रान्तिकारी व्यक्तित्व देश के युवकों के लिये प्रेरणा बना रहेगा।

काश्मीर के मुख्यमन्त्री श्री ग़ुलाम मुहम्मद सादिक ने कहा कि डा० लोहिया की मृत्यु से देश के राजनैतिक जीवन में एक रिक्तता आ गई। वे समाजवाद में विश्वास करते थे तथा उन्हों ने दलित लोगों के लिये हमेशा संघर्ष किया।

महाराष्ट्र के मुख्यमन्त्री श्री वी० पी० नाईक ने डा० लोहिया को एक अच्छा सांसदिक बताया और कहा कि स्वतन्त्रता आन्दोलन में उनका काफ़ी योगदान था। नेहरू परिवार से उनके संबंध प्रगाढ़ रहे।

राजस्थान के मुख्यमन्त्री श्री मोहन लाल सुखाड़िया ने कहा कि डा० लोहिया बहादुर सेनानी और पददलितों के महान् मित्र थे। उन की मृत्यु से

भारनीय राजनीति-मंच पर जो भारी सूनापन आया है, उसे नहीं भरा जा सकता है।

पंजाब के मुख्य मन्त्री श्री गुरनाम सिंह ने कहा कि डा० लोहिया का व्यक्तित्व अत्यन्त गतिशील था। उन की मृत्यु से देश की भारी क्षति हुई है।

मद्रास के मुख्यमन्त्री श्री सी० एन० अन्नादुराई ने कहा कि डा० लोहिया की अप्रत्याशित और असामयिक मृत्यु से लोकतंत्री भारत ने स्वतन्त्रता का चैम्पियन खो दिया। अत्यन्त स्पस्टवादी डा० लोहिया संसद् में विरोधी दलों के लिये शक्ति-स्तम्भ थे।

मध्य प्रदेश के मुख्यमन्त्री श्री गोविन्द नारायण सिंह ने एक शोक-सन्देश में कहा डा० लोहिया हमारे स्वतन्त्रता-संग्राम के बहादुर और अदम्य सिपाही थे और हिन्दी समर्थक एवं लोकतंत्री के हिमायती के रूप में उन्होंने अपना संघर्ष जारी रखा। उनकी आत्मा को शान्ति मिले।

उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व मुख्य मन्त्री श्री चन्द्रभानु गुप्त ने कहा कि हमारे देश के विकास की इस घड़ी में डा० लोहिया के निधन से अपूरणीय क्षति हुई है। समाज़वादी जगत् ने अपने एक ऐसे नेता को खो दिया ज़ो सतत समाज-घाद के बिकास के लिये कार्यरत रहा। उत्तर प्रदेश के ही भूतपूर्व मुख्य मन्त्री श्रीमती सुचेता कृपलानी ने कहा कि किसी भी प्रकार के अन्याय के विरुद्ध उन्होंने हमेशा संघर्ष किया।

बिहार के राज्यपाल श्री अनन्त शयनम् अय्यंगार ने कहा कि डा० लोहिया के अकाल निधन पर मुझे भारी दुःख है। वे देश के स्वतन्त्रता संग्राम के एक अग्रगण्य योद्धा थे और स्पष्ट-वक्ता तथा आलोचक थे। वह आर्थिक और राजनैतिक दोनों ही क्षेत्रों में तेज़ी से आगे बढ़ने के लिये प्रेरित करते रहते थे।

विश्व का प्रथम नागरिक—

असम-विधान-सभा के अध्यक्ष श्री हरेश्वर गोस्वामी ने कहा कि डा० लोहिया को वस्तुतः 'विश्व का प्रथम नागरिक' कहा जा सकता है। श्री गोस्वामी बीस साल तक डा० लोहिया के साथी रहे हैं। उन्होंने शोक व्यक्त करते हुये कहा कि डा० लोहिया समानता, लोकतंत्र और आज़ादी के आधार पर विश्व संघ की स्थापना में तहे दिल से विश्वास करते थे।

विलक्षण हस्ती—

पेट्रोलियम, रसायनमन्त्री तथा लोहिया के पुराने सहयोगी श्री अशोक

मेहता ने दिवंगत नेता डा० राम मनोहर लोहिया के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा डा० लोहिया की मृत्यु से समाजवादी आन्दोलन की एक विलक्षण हस्ती उठ गयी है। डा० लोहिया जैसे नेता की हमारे समाजको बड़ी जरूरत थी। इस प्रकार की हस्तियाँ हमारे जन-जीवन से तेज़ी से लुप्त होती जा रही हैं।

भारतीय क्रान्तिदल के नेता श्री हुमायू कबीर ने कहा कि उन की अकाल मृत्यु का समाचार सुन कर बहुत दुःख हुआ। मैं उन्हें पिछले ३० वर्षों से भी अधिक समय से जानता था, और हालांकि हमारे बीच मत भेद हुये, फिर भी मेरे दिल में उनके लिये भारी आदर और स्नेह का भाव रहा। यह भारत के लिये दुःखद है कि राष्ट्र की अधिक रचनात्मक सेवाओं में उन की निसंदिग्ध प्रतिभा का इस्तेमाल नहीं किया जा सका। उन की मृत्यु से संसद् को एक अत्यन्त रंगीले व्यक्ति की क्षति हुई है।

एक श्रेष्ठ पुत्र चला गया--

वामपक्षीय साम्यवादी नेता श्री भूपेश गुप्त ने कहा--डा० लोहिया के निधन से देश का एक श्रेष्ठ पुत्र तथा सर्वहारा वर्ग का एक महान् योद्धा चला गया है। वे जो कुछ कहते थे या करते थे, उससे चाहे मैं सहमत हुआ हूँ या नहीं, परन्तु यह स्वीकार किये बिना नहीं रहा जा सकता कि अपने संघर्षरत जीवन में उन्हों ने सिद्धान्तों की बलि दे कर कभी समझौता नहीं किया। उन्होंने वामपक्षी तत्त्वों की एकता के लिए भारी प्रयास किए। उन के लिये सब से अच्छी श्रद्धांजलि यही है कि हम सभी समाजवादी तथा लोक-तंत्रीय ताकतों की एकता के लिये काम करें।

व्यक्तिगत क्षति---

लोक-सभा में वाम-पंथी कम्यूनिस्ट पार्टी के नेता श्री ए० के० गोपालन् ने कहा कि लोहिया जी की मृत्यु देश के लिये महान् क्षति है। मेरी तो व्यक्तिगत क्षति है, क्योंकि हमने न केबल संसद् में एक सहयोगी के रूप में, बल्कि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में भी उन के साथ काम किया था। लोहिया जी प्रतिपक्ष और समाजवादी आन्दोलन के प्रेरणा-स्रोत थे।

दक्षिणपंथी साम्यवादी पार्टी के महामन्त्री श्री राजेश्वर राव ने डा० लोहिया की मृत्यु पर गहरा शोक प्रकट करते हुए एक प्रैस वक्तव्य में कहा कि डा० लोहिया की मृत्पु से मातृभूमि तथा विशेष रूप से वामपंथी और

लोकतान्त्रिक शक्तियों को महान् क्षति पहुँची है ।

जनसंघ के अध्यक्ष श्री बलराज मधोक ने कहा कि देश जन-साधारण के लिये दृढ़ता से सोचने और काम करने वाले महान् जन-सेवक से वंचित हो गया ।

जनसंघ के महामन्त्री पं० दीनदयाल उपाध्याय ने अपनी श्रद्धाँजलि अर्पित करते हुये कहा कि डा० लोहिया एक प्रभावशाली व्यक्ति तथा जन्मजात विद्रोही थे । वे एक देश-भक्त थे तथा किसी भी मत को चुनौती देने का उनमें साहस था ।

रिपब्लिकन पार्टी के नेता श्री बौद्धप्रिय मौर्य ने कहा कि लोहिषा जी की मृत्यु से देश के दलित वर्ग ने पराक्रमी योद्धा खो दिया ।

प्रजासोशलिस्ट पार्टी ने लोहिया के निधन पर केन्द्रियकार्यालय का झण्डा झुका दिया और एक शोक-प्रस्ताव स्वीकृत किया । पार्टी के अध्यक्ष श्री एन० जी गोरे ने कहा कि डा० लोहिया की मृत्यु से जो रिक्तता आयी है, उस की बहुत दिनों तक पूर्ति नहीं हो पायेगी तथा देश के प्रगतिशील शक्तियों को जो क्षति पहुँची है वह प्रायः अपूरणीय रहेगी । श्री प्रेम भसीन ने कहा कि डा० लोहिया जीवनपर्यन्त संघर्ष करते रहे । राष्ट्र उनके बिना रंक हो जायेगा । प्रसोपा के ही प्रो० एम० आर० दण्डवटे ने श्रद्धाँजलि अर्पित करते हुये कहा कि डा० लोहिया जी की मृत्यु से एक संवेदनशील राजनीतिज्ञ छिन गया । जिस में अदमनीय साहस था, अन्याय के प्रति जिस की भौंहें तनी रहती थीं तथा शोषित और दलितों के लिये जिस का हृदय सहानुभूति से ओत-प्रोत था ।

साफ़-दिल आदमी :—

भारत सरकार के संसदीय मामलों के मन्त्री डा० राम सुभग सिंह ने कहा कि डा० लोहिया एक महान् क्राँतिकारी थे और उन का लोक-तंत्रीय सिद्धान्त में बेहद विश्वास था । उन का चिंतन अपने ढंग का था और उन के आदर्श उच्च थे ।

लौ बुझ गई :—

काँग्रेस-संसदीय-दल के उपनेता श्री एस० एन० मिश्रा ने कहा है—डा० लोहिया की मृत्यु से प्रबुद्धता की एक प्रकाशमान लौ बुझ गई । वह भारत और उसकी जनता के प्रेम के प्रति दीवाने थे । मरते दम तक उन्हें देश की जनता की ही फ़िक्र रही ।

केन्द्रीय श्रम-मन्त्री श्री जय सुख लाल हाथी ने कहा कि उन्होंने अपना समूचा जीवन देश की सेवा में होम दिया।

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के संचालक एम० एस० गोलवलकर ने कहा कि डा० लोहिया की मृत्यु से देश ने एक विद्वान् और बेजोड़ समाजसेवी खो दिया है। उन्हें हमेशा राष्ट्र की चिन्ता रहती थी।

देश के वयोवृद्ध विचारक और स्वतन्त्र पार्टी के नेता श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने कहा—डा० राम मनोहर लोहिया का खेल खत्म हो गया। मेरी आशा और प्रार्थनाएं काम नहीं आईं। उन की मृत्यु से हमने राजनैतिक जीवन के कुछ ईमानदार और क्रान्तिकारी लोगों में एक को खो दिया हैं। डा० लोहिया को लोगों का ढीला होना नापसंद था, जो किसी काम को तो चाहते हैं लेकिन उन के लिये प्रयत्न नहीं करते। वह उन लोंगों से नाराज़ थे जो अपनी वाजिव नाराज़गी ज़ाहिर करने में भी असमर्थ होते थे। मैं उन हज़ारों लोगों के साथ उन्हें अपनी श्रद्धाँजलि अर्पित करता हूँ जो डा० लोहिया की मृत्यु से दुःखी है।

स्वतन्त्र पार्टी के नेता मधु मेहता ने कहा एक महान् वा साहसी स्वतंत्रता सेनानी तथा कुशाग्र बुद्धि एवं मौलिक समाजवादी हमारे बीच से उठ गया।

अखिल भारतीय फारवर्ड ब्लाक के कोषाध्यक्ष तथा केरल के अध्यक्ष श्री के० एम० मुहम्मद वशीर ने कहा कि गतिशील नेतृत्व में डा० लोहिया का स्थान नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के बाद आता है।

प्रयाग विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर श्री आर० के० नेहरू ने कहा कि डा० लोहिया की असामयिक मृत्यु से मुझे गहरा दुःख हुआ। वे प्रतिभावान् विचारक, वक्ता और जन नेता थे। भारत की आज़ादी की लड़ाई में उन्होंने जो काम किया है, उसे सहज भुलाया नहीं जा सकता।

काशी विद्यापीठ के वाइस चाँसलर प्रो० राजाराम शास्त्री ने कहा कि डा० लोहिया के निधन से भारतीय राजनीति में जो बड़ा अभाव पैदा हो गया है उस की पूर्ति मुश्किल है। वे विचार और कार्य दोनों दृष्टियों से बहुत बड़े गांधीवादी नेता थे जो कि इस रूप में उन्हें लोग कम जानते हैं। वे बहुत बड़े चिन्तक और विचारक थे। आप ने आशा व्यक्त की कि देश के प्रगति-शील तत्त्व उन की परम्पराएं कायम रखेंगे।

कश्मीर नेशनल काँफ्रेंस के नेता बख्शी गुलाम मोहम्मद ने कहा, डा० लोहिया जन-साधारण के नेता थे। ऐसे लोग कश्मीर में पाकिस्तान में, अफ़गानिस्तान में और पूरे अफरएशियाई क्षेत्र में रहते हैं। जहाँ ग़रीब रहते हैं।

वहाँ डा० लोहिया याद किये जायेंगे।

संसोपा नेता श्री राज नारायण ने शोक-विह्वल होकर कहा कि लोहिया के निधन से समाजवाद की ज्योति बुझ गई है।

बुद्ध मार्क्स और गांधी के समान :—

संसोपा के मध्य प्रदेश के नेता जगदीश जोशी ने डा० राम मनोहर लोहिया के प्रति श्रद्धांजलि अर्तित करते हुए कहा कि डा० लोहिया के जीवन की तुलना बुद्ध, मार्क्स और गान्धी जी के जीवन से की जा सकती है। इन महान् व्यक्तियों की तरह डा० लोहिया ने भी अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये स्वार्थरहित आचरण करने का आदर्श उपस्थित किया।

शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के अध्यक्ष संत फ़तेह सिंह तथा अन्य अकाली नेताओं ने संयुक्त रूप से एक तार भेज कर डा० लोहिया के देहान्त पर भारी दुःख प्रकट किया। देश, लोक-तन्त्र समाजवाद और भारत के विरोधी दलों को हुई क्षति की पूर्ति संभव नहीं है। ८६ वर्षीय मास्टर तारा सिंह ने रोग शैय्या से शोक-सन्देश भेजा।

राजस्थान के भूतपूर्व राज्यपाल डा० सम्पूर्णानन्द ने कहा कि डा० लोहिया ने अपने को अनेक लक्ष्यों के प्रति समर्पित किया और उनमें से अनेक ला दिये। उन में समर्थकों को आकर्षित करने और उन्हें बनाये रखने का महान् गुण था।

लोक-सभा के उपाध्यक्ष श्री आर० के० खाडिलकर ने कहा—भारतीय राजनैतिक जीवन, विशेषकर देश के समाजवादी आन्दोलन का एक विद्युतमय तार अचानक टूट गया है।

भारतीय भाषाओं का पूजारी:—

दिल्ली के मुख्य कार्यकारी पार्षद श्री विजय कुमार मल्होत्रा ने डा० राम मनोहर लोहिया के निधन पर दुःख प्रकट किया। श्री मल्होत्रा दिवंगत नेता को श्रद्धांजलि अर्पित करने डा० लोहिया के निवास स्थान पर भी गये। उन्होंने कहा डा० राम मनोहर लोहिया भारत भूमि के एक सच्चे सेनानी और देश-भक्त थे। उनके निधन से भारतीय राजनीति के आकाश के एक ऐसे सितारे का बे-वक्त अस्त होना, देश के और उन के दल के कार्यकर्ताओं के लिये पीड़ा का विषय बना रहेगा। वे अपने कर्त्तव्यों के प्रति सजग और अपने सिद्धान्तों के दृढ़ अनुयायी थे। पर दलित और समाज उपेक्षित वर्गों के अधिकारों के लिये अथक प्रयत्न करते रहना, उन के कई महान् गुणों में एक गुण था। डा०

लोहिया की मृत्यु से देश ने केवल एक महान् विचारक और देश-भक्त ही नहीं बल्कि एक हिन्दी प्रेमी और भारतीय भाषाओं का पुजारी खो दिया।

दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन के महासचिव श्री महावीर प्रसार वर्मन ने प्रदेश साहित्य सम्मेलन की ओर से शोक प्रकट करते हुये कहा कि डा० लोहिया ने समय समय पर स्वाधीन भारत की राष्ट्रीय सावनाओं को बढ़ावा देने के लिये आन्दोलन चलाया। उन के प्रयत्न से हिन्दी को आगे बढ़ने का अवसर मिला। उन जैसे कट्टर राष्ट्र भाषा समर्थक का निघन होना, हिन्दी के लिये भारी क्षति कहा जा सकता है।

राष्ट्रीय मज़दूर फ़ेडरेशन के अध्यक्ष श्री दलजीत सिंह ने शोक प्रकट करते हुए अपनी श्रद्धाँजलि में कहा कि डा० लोहिया देश में समाजवाद का नारा बुलन्द करने वाले प्रमुख व्यक्ति थे। वह चाहते थे कि इस देश मैं ग़रीबों को अपने पैरों पर खड़े होने का पूरा अवसर मिले।

फ्रैन्डस इन्टरनैशनल (भारत) ने लोहिया के ऐसे समय में निधन पर शोक प्रकट किया।

रोहतास नगर वेलफ़ेयर एसोसियेशन के प्रधान श्री राधेश्याम खन्ना ने एसोसियेशन की ओर से डा० लोहिया के निधन पर शोक प्रकट करते हुये कहा कि ऐसे अवसर पर डा० लोहिया के नेतृत्व की बड़ी आवश्यकता थी। उन का देहानवास राष्ट्र के लिये भारी क्षति है।

समाजवादी अनाथ :—

संसोपा के श्री मनी राम बागड़ी ने कहा कि शोषित श्रम-जीवी वर्ग का संरक्षक चल बसा।

बिहार के उपमुख्यमन्त्री और संसोपा के नेता श्री कर्पूरी ठाकुर ने कहा कि राजनैतिज्ञ मुश्किल से ही संत होते हैं। लेकिन डा० लोहिया संत-राज-नीतिज्ञ थे।

संसोपा (असम) के मन्त्री श्री अजीत कुमार शर्मा ने कहा कि विश्व समाजवावाद का योग्यतम प्रवक्ता और सिद्धान्तकार तथा भारत का महान् समाजवादी दार्शनिक चल बसा।

डा० राम मनोहर लोहिया के निधन का समाचार सुनते ही संपूर्ण देश शोकाकुल हो गया। हिन्दुस्तान के सभी अखबारों ने चाहे जिस किसी भी भाषा में रहे हों लोहिया के मृत्यु का समाचार मुख्य पृष्ठ पर छापा। और अवने सम्पादकीय लेख में लिखा कि ऐसा विलक्षण पुरुष इतिहास में कोई

ही होता है। देश की सारी विधान सभाओं में शोक श्रद्धांजलियाँ दी गई। मध्यप्रदेश सरकार ने तो उनके निधन का समाचार सुनते ही उन के शोक में एक दिन की छुट्टी कर दी। करीब-करीब देश के सभी अखबारों ने लोहिया के ऊपर अनेक प्रकार के लेख छापे। सभी शहरों में शोक-सभायें हुई। और शोक में बाजार बन्द हो गये। सभी वर्गों के लोगों ने शोक-विह्वल-श्रद्धांजलियाँ दीं। विद्वानों, पददलितों, राजनीतिज्ञों, देश के समाजसेवियों, कवियों आदि ने भारतीय राजनीति के इतिहास के इस अद्भूत, प्रचण्ड कर्मठ, साहसी, विद्वान् का एक स्वर से गुण गाया। जिसकी कथनी ही कर्म थी। इतिहास उन के गुणों को ले कर युग-युग तक अपने आप में बनाये रखेगा।

ऐसे थे डा० लोहिया

"१९४६ में जब डा० लोहिया जेल से छूट कर आये तो गान्धी जी ने पत्र लिख कर लोहिया से अनुरोध किया कि वे अपने पिता श्री हीरा लाल जी का श्राद्ध करें। उनकी कुछ की मास पूर्व मृत्यु हुई थी। इस पर डा० लोहिया ने कहा कि श्राद्ध में मेरा विश्वास नहीं है। तथा परम्पराओं के पालन से मेरी धारणा पर ठेस लगेगी।"

"जब श्री मुरारजी देसाई उन्हें देखने नर्सिंग होम आये तो लोहिया जी के मित्रों ने लोहिया जी से पूछा कि मुरार जी ने उनसे क्या कहा। डा० लोहिया ने मुस्कराकर कहा 'वही पुरानी बात। संसद की तरह यहाँ भी मुझसे उन्होंने चुप रहने को कहा।"

"इसके पहले जब उनकी चिकित्सा करने वाले डा० ब्रिगेडियर लाल उन्हें देखने आये तो लोहिया जी हँसते हुए उनसे बोले—'डा० इसमें आपका कोई दोष नहीं है। इस देशके डाक्टर और नेता दोनों ही अज्ञानी हैं।"

"मृत्यु के दो दिन पूर्व जब उन्हें चेतना आयी थी तब अपने चारों ओर डाक्टरों की भारी भीड़ देखकर उन्होंने कहा एक आदमी के लिये इतने डॉ० और इस देश में अधिकांश लोगों को कठिन बिमारियों में भी डाक्टर की सहायता नहीं मिल पाती।"

अनेक वर्ष हुए जब डॉ० लोहिया ने यह इच्छा प्रकट की थी कि मृत्यु के बाद उनका शव किसी मेडिकल कॉलेज को दे दिया जाय। लेकिन दिल्ली में बिजली की चिता बनने के बाद उन्होंने कहा था कि मेरा दाह-संस्कार इस चिता पर किया जाय।

लोहिया का दाह-संस्कार विद्युत्-दाह-गृह पर क्यों किया गया इसके पीछे भी एक रहस्य हैं। एक बार डा० लोहिया बनारस में नाव पर बनारस के

घाटों का अवलोकन कर रहे थे। जब उनकी नौका मणिकर्णिका घाट के सामने आई तो उन्होंने नाव को थोड़ी देर के लिये रूकवाया और बड़ी निगाह से विचारपूर्ण मुद्रा में घाट पर जलाये जा रहे मुर्दों की ओर देखने लगे। कोई मुर्दा बड़ी लौ के साथ जल रहा था। कोई धीमे-धीमे। यह देखकर उन्होंने अपने मित्रों से कहा, देखो यह अमीर घर का है। उसमें घी, चन्दन और धूप डाला जा रहा है। वह तेज़ी से बड़े लौ के साथ जल रहा है। यह देखो यह ग़रीब घर का मुर्दा है। धीरे-धीरे जल रहा है। उसके लिये पूरी लकड़ी भी नहीं है। यहाँ भी अमीरी और ग़रीबी का फ़र्क है। क्यों न इस देश में विद्युत्-दाह-गृह बना दिये जाएं जहाँ सभी एक समान जलाये जाएं। मैं अपना दाह-संस्कार विद्युत्-दाह गृह में ही पसन्द करूँगा।

डा० लोहिया की मृत्यु के पश्चात् यह निश्चय किया गया कि अंत्येष्टि के समय मन्त्र-पाठ नहीं होगा। क्योंकि डॉ० लोहिया ने अपने कुछ निकटतम सहयोगियों से कहा था कि उनकी अन्त्येष्टि परम्परागत वैदिक विधियों के बिना की जाय। डॉ० लोहिया इन विधियों को जाति और वर्ग से ग्रसित का प्रतिबिम्ब मानते थे। अतः उनसे घृणा करते थे।

डॉ० लोहिया के संसोपा के बाहर के प्रशंसको ने प्रस्ताव किया था कि डा० लोहिया के दर्जे को देखते हुए उनकी विशाल स्तर पर अन्त्येष्टि का खर्च करने को वे तैयार हैं। उनके दूर के रिश्तेदारों का भी यही मत था। लेकिन संसोपा के नेताओं ने सादगी बरतने पर ही ज़ोर दिया। अन्त्येष्टि के लिये केवल १५० का खर्च तय किया गया। भारत में जनसाधारण इतना ही खर्च कर पाता है।

डॉ० लोहिया का भारतीय या विदेशी बेंकों में कोई खाता नहीं था और इसकी उन्होंने कभी ज़रूरत भी महसूस न की। अपनी अंतिम विदेश-यात्रा को रवाना होते समय उन्होंने टिकट खरीदने के लिये कर्ज लिया था। मृत्यु के समय केवल उनके कपड़े और पुस्तकें ही उनकी बची सम्पत्ति थी।

डॉ० लोहिया ने कोई वसीयत नहीं छोड़ी है। लेकिन १९५५ में लिखे गए उनके सभी पत्र संसोपा के केन्द्रीय कार्यालय को प्राप्त है दल को उनकी सभी पुस्तकें और पत्र मिलेंगें, जो डॉ० लोहिया की प्रिय निधि है।

आपरेशन के लिये नर्सिंग होम में दाखिल होने से पूर्व नियमित पत्रिकाओं की व्यवस्था के लिये मैनकाइंड-जन ट्रस्ट का पुनर्गठन किया। ट्रस्ट में डा० लोहिया के अतिरिक्त श्री रमा मित्रा, श्री राज नारायण, श्री भूपेन्द्र नाथ

मंडल, श्री विनायक पुरोहित और दिल्ली के एक एड्वोकेट श्री जे. पी. गोयल भी शामिल किये गये।

डा० लोहिया भारत और एशिया के लिये एक समाजवादी विश्वविद्यालय की स्थापना करना चाहते थे और हाल ही में उन्होंने ऐसे विद्यालय की स्थापना के लिये एक संस्था भी गठित की थी। और इसके लिये भारत के बीच में मध्य-प्रदेश के एक गांव को चुना था।

संसद्-सदस्य के रूप में उन्हें जो वेतन मिलता था, उसके अतिरिक्त डॉ० लोहिया की आय का एक-मात्र साधन उनकी पुस्तकों पर एक दर्जन से अधिक भारतीय और विदेशी प्रकाशकों से मिलने वाली रायल्टी थी।

......मैं बार-बार अपने लोगों को और हिन्दुस्तान के लोगो को कहना चाहता हूँ कि वह सच-झूठ है कि जिसमें ताकत नहीं है कि वह अपने प्रभुत्व को जमा सके। क्या फ़ायदा अगर हम अपने कमरे में बैठ कर खुश हो लेकिन हमने तो सच कह दिया या लिख दिया, अगर उसके ख़िलाफ़ सारी कार्यवाही होती रहती है।...

...मेरा एक विश्वास यह भी है कि लोक-सभा के ज़रिये कभी भी नई चीज़ नहीं हुआ करती, बड़े पैमाने की नई चीज नहीं हुआ करती। नई चीज़ होती है, हमेशा बाज़ारों में सड़क पर कारखानों में और दुकानों में जहां पर कि जनता रहती है।

...आजकल विधान सभा और संसद् तो ऐसी हो गयी है कि यहाँ उठो, इस तरह बोलो, इस तरह लोगों का स्वागत करो, वगैरह। संसद् तो एक शीशा है जो साफ़ रहे ताकि सबके सुख-दुःख और अरमान का चेहरा उसमें उतर आये। लेकिन वहाँ तो तहज़ीब ने स्थान जमा रखा है उत्तर-प्रदेश में साढ़े छह करोड़ लोग हैं। इसके लिये कितने विधान-सभा की बैठक होनी चाहिएँ? इगलिस्तान की लोकसभा तो १० महीने बैठती है और यहाँ बुनियादी सवालों को छोड़ कर तीन-चार महीने में केवल विधेयक पास कर दिये जाते हैं।

"प्रधानमंत्री होने के पहले की तो मैं नहीं जानता। किसी ज़माने में मैं भी थोड़ा बहुत चक्कर में रहा हूँ, लेकिन जबसे यह प्रधानमंत्री बने हैं तबसे साफ़ बात कहने की आदत तो बिल्कुल ही नहीं रही। हमेशा गोल बात करते हैं। चीन पाकिस्तान की सरहद के मामले में सन् १९५७ के पहले प्रधानमंत्री को बिल्कुल चिन्ता नहीं थी। तब हिन्दुस्तान के अफ़सर चीन के अफ़सरों से बात करने लगे और इतने मोटे-मोटे पोथे छपे, उनमें कहीं जिक्र नहीं है लेकिन

चीन-पाकिस्तान की सरहद की बहुत ज़्यादा चिन्ता होने लगी है। लांगजू घाटी है। उसके बारे में प्रधानमन्त्री ने अक्सर कहा है कि वह विवादग्रस्त इलाका है। किसी भी देश के प्रधानमन्त्री को अपने देश की भूमि के किसी भी अङ्ग के बारे में, खास तौर से लड़ाई के दिनों में यह नहीं कहना चाहिये कि यह विवादग्रस्त इलाका हैं। इस तरह के शब्द किसी अच्छे प्रधानमंत्री के नहीं होते।" (लोकसभा में प्रथम भाषण),

"प्रधानमंत्री से मेरी कोई निजी लड़ाई नहीं है। बहुत बातें चलती थीं हथियार की। हथियारों की और निरपेक्ष नीति से कोई सम्बन्ध नहीं और मैं प्रधानमन्त्री का उनकी बहुत पुरानी एक बात याद दिलाना चाहूँगा। जब ऐसा कहा करते थे कि जब घोड़ा ही नहीं है तो लगाम किस काम की। जब हिन्दुस्तान का राष्ट्र ही नहीं बचा रह पाता तो क्या निरपेक्ष नीति, क्या सापेक्ष नीति और क्या कोई नीति है।"

"पंचवर्षीय योजना के सम्बन्ध में तो मुझे केवल इतना ही कहना है कि इस योजना को अब आमूल बदलना चाहिये। कुछ जरूरी औद्योगिक आधुनिकीकरणे जैसे फ़ौलाद वगैरह को छोड़ कर खपत में आधुनिकीकरण के खर्चें तत्काल और बिल्कुल बन्द कर देना चाहिये। अव्वल अन्न सेना, दूसरे साक्षरता सेना और तीसरे पानी नल की योजनाओं का आरम्भ जल्दी से जल्दी होना चाहिये। सारे देश में सभी घरों को पानी देने के लिये २०.२५ अरब रुपये का एक दस वर्षीय योजना में काम हो जायेगा। मैं यहाँ यह भी बना दूं कि केन्द्रीय और राज्य सरकारी का सब खर्च सालाना २६ अरब रुपये या उससे भी ज़्यादा है। ऐसा परिवर्तन तभी सम्भव है जबकि विरोधी राजनीति मज़बूत और रचनात्मक हो। आज़ तो यह अफ़सोस की बात है कि क्रान्तिकारी लोग भी जब उनके सिर पर हथौड़ा पड़ता है तभी चेतते हैं। आग लगने पर वे कुआँ खोदना चाहते है। जब पानी अथवा अन्न का अकाल पड़ जाता है। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि जनता आज निष्प्राण है कि वह तात्कालिक समस्याओं के बारे में ही सोचती है और वह कभी भी आगे के मामलों में दिलचस्पी नहीं लेती। किन्तु अगर राजनैतिक पार्टियों का यह रवैया रहा तो भविष्य अन्धकार, पूर्ण है। लोग दिलचस्पी लें या न लें, चाहे वक्ती तौर पर लोकप्रियतता; खटाई में ही क्यों न पड़ जाय, समाजवादी दल को साल-छह महीने पहले से उचित चीज़ों के लिये सचेष्ट रहना चाहिये।"

...मेरा सरकार से कोई सरोकार नहीं रहा। अंग्रेज़ों ने आठ बार मुझे

जेल में रखा तो प्रधानमन्त्री (श्री नेहरू) ने भी मुझे दस बार जेल में रखा। फिर भी मेरे मन में ग्लानि है। मैं शर्म खाता हूँ कि आज हिन्दुस्तान कमज़ोर रह गया और उसके लिये कुछ न कर पाये।

...देश में ६० सैकड़ा कुटुम्ब २५ रुपये महीना पर निर्वाह करते है, यानी २७ करोड़ आदमी तीन आने रोज़ पर निर्वाह करते है। मैं चाहता हूँ यह हमेशा याद रखा जाए कि देश के २७ करोड़ आदमी तीन आने रोज़ के खर्च पर आज ज़िन्दगी चला रहे हैं।

आज हम टूटे हुए हैं। मन्त्री मण्डल दो हिस्सी में टूटा हुआ है। लोकसभा विदेशी मामलों में दो हिस्सों में टूटी हुई है। अगर देशी माललों में टूटती तो समझ सकता। सारा देश टूटा हुआ है। मैं जानना चाहता हूँ कि क्या इतिहास में कोई और भी देश ऐसा रहा हैं जो किसी विदेशी प्रश्न पर इतना टूटा है जितना हिन्दुस्तान ?

...सबसे पहला आरोप मैं इस सरकार के खिलाफ लगाना चाहता हूँ कि यह अज्ञान के आधार पर बाँझ और परिणामहीन लफ्फाज़ी शब्द तथा शब्द-कोश के ऊपर अपना काम-काज चला रही है।

...यह सरकार राष्ट्रीय शर्म की सरकार है और जनता का इस सरकार की समर्थन प्राप्त नहीं है।

...दामों की ज़बरदस्त लूट चल रही है। स्ट्रेप्टोमाइसीन की सुइ सरकारी कारखाने में बनती है। दो आने खर्च में तैयार होती हैं। लेकिन बाज़ार में वह दो आने की बजाय बारह-चौदह आने में बिक रही है। तपेदिक के फेफड़े से लूट करते हुये सरकार को शर्म नहीं आती है ? ज़रूरी चीज़ों के दामों में इतनी ज़बरदस्त लूट कम्पनियों और सरकार की चल रही है। हममें से कुछ हैं जो सिर्फ़ कम्पनी की लूट बन्द करना चाहते हैं, कुछ हैं जो सिर्फ़ सरकार की लूट को बन्द करना चाहते हैं लेकिन कम से कम मैं उनमें से हूँ जो दोनों लूटों को बन्द करवाना चाहता हूँ।"

यों तो डॉ० लोहिया आज चले गये हैं। अपने पारिवारिक आगे आने वाली पीढ़ी को अविवाहित रह कर समाप्त कर दिया है। लेकिन जो उन्हों ने सम्पूर्ण देश में अपना भरा परिवार छोड़ा है मुझे आशा है कि यह परिवार उनके विचारों को देश में फैलाता रहेगा, उसका प्रचार करता रहेगा और उन्हीं के बताये लम्बे रास्ते पर आगे-आगे चलता जाएगा, जो बुद्धिजीवियों को आकर्षित करता रहेगा।

राम मनोहर लोहिया, चले गये परलोक

विजया दशमी पर्वपर, दे भारत को शोक
राम मनोहर लोहिया, चले गये परलोक
चले गये परलोक, छोड़ प्रोग्राम अधूरा
होगा लक्ष्य समाजबाद कैसे पूरा
आज राजधानी में वातावरण ग़मी का
गया शोक में बदल पर्व विजया दशमी का

जन्मे फ़ैजाबाद में, छाने देश विदेश
करते ऐसा कार्य थे, कटे व्यक्ति का क्लेश
कटे व्यक्ति का क्लेश, न कोई दीन अधम हो
असमय में उठ गये किन्तु वे चैन न लेंगे
लक्ष्य प्राप्ति संघर्ष के लिये फिर जन्में गे ।

मयक

●

१ बर्लिन में विद्यार्थी, १९३१

पहली गिरफ्तारी कलकत्ता, १९३६
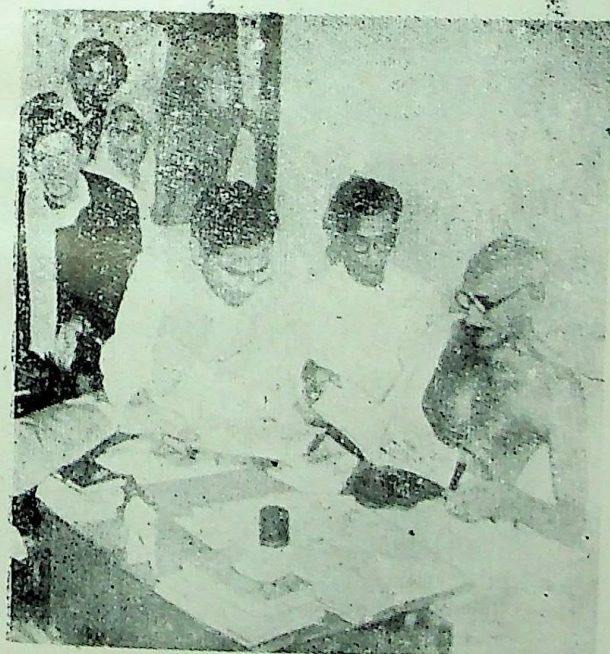
गांधीवादी पत्रकार-देशी तथा विदेशी पत्रकारों के साथ गांधी के सामने साबरमती आश्रम

२—सन् ४२ विद्रोह का नायक, लम्बी नजरबंदी के बाद जेल से रिहा १९४६

गांधीजी के सा[illegible] १९४६

३–दिल्ली में आज़ादी का साल १९४७
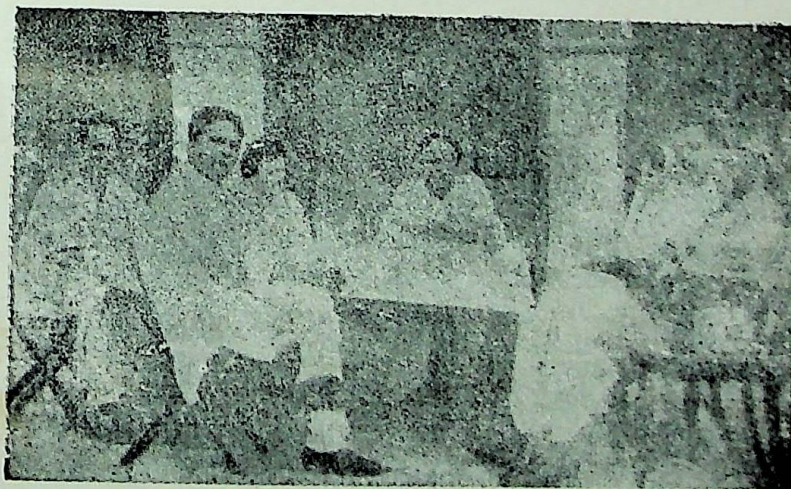
चंपारन में नील-खती जांच आयोग के अध्यक्ष लोहिया, दायें सिर पर कर्पूरी ठाकुर, घुटने पर हाथ रखे सदस्य रामनंदन मिश्र

४—नेहरू के साथ, १९४८

गांधी के शिष्य राजघाट पर
जनवाणी दिवस ५२
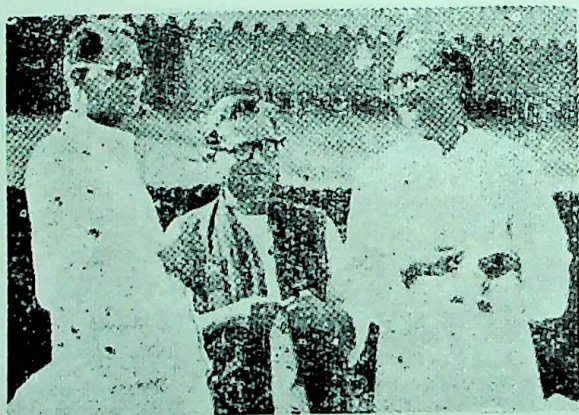
जयप्रकाश और रामवृक्ष बेनीपुरी के साथ, जन-प्रदर्शन पटना १९५२

५—मौलिक समाजवादी, चिन्तक १९५५

समाजवादी पार्टी, स्थापना सम्मेलन प्रतिनिधि-साथियों के साथ १९५५

६—पत्र-प्रत्रिकाओं के लिये लेख लिखने की तैय्यारी में

दौरे के बाद देश के गरीबी पर चिन्तन
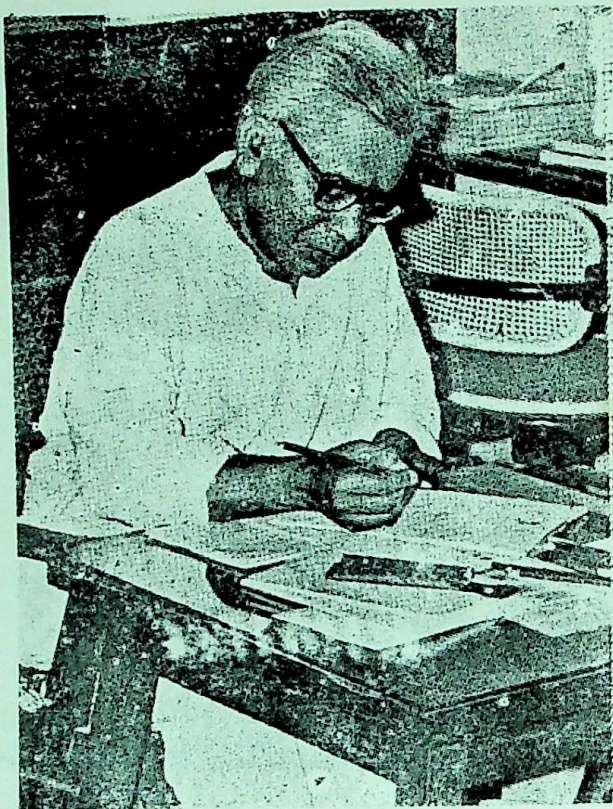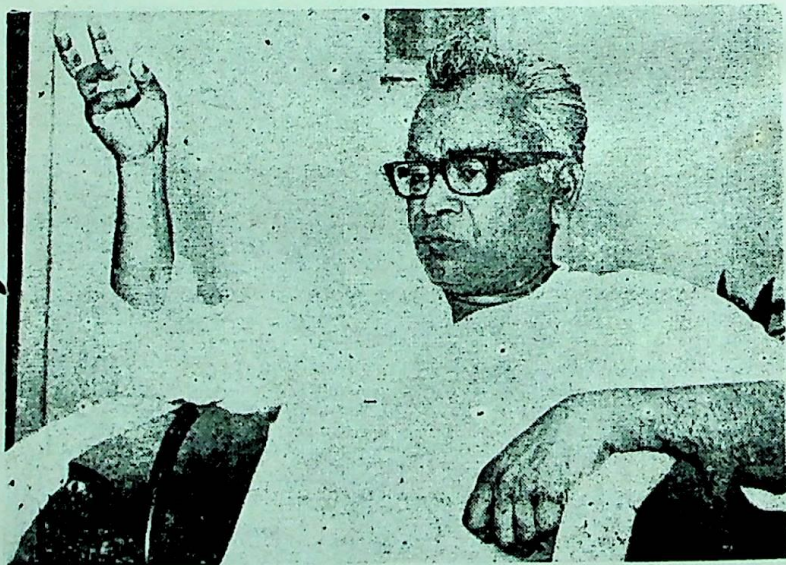
७–हर जुल्म के विरोध में लड़ना सिविल नाफरमानी है। सिविल नाफरमानी करने वाले समय-कुसमय नहीं देखा करते। जहां भी अन्याय देखते हैं संघर्षरत हो जाते हैं
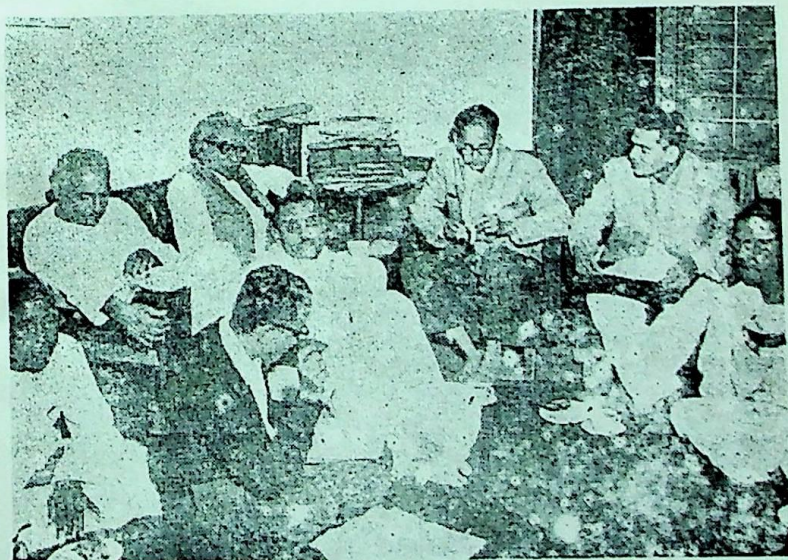
मित्र मंडली के साथ प्रसन्न मुद्रा में १९६७
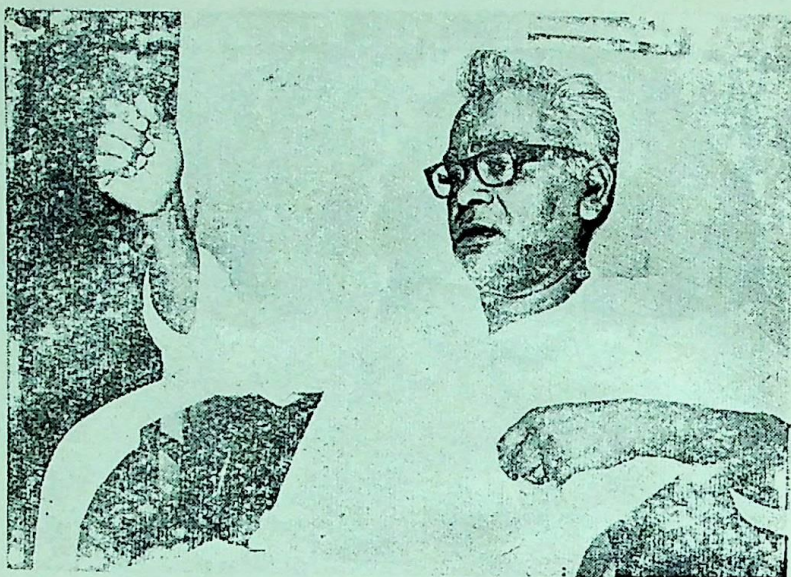
९–१९६७ में विजयी पार्टी के संसद सदस्यों के साथ ।
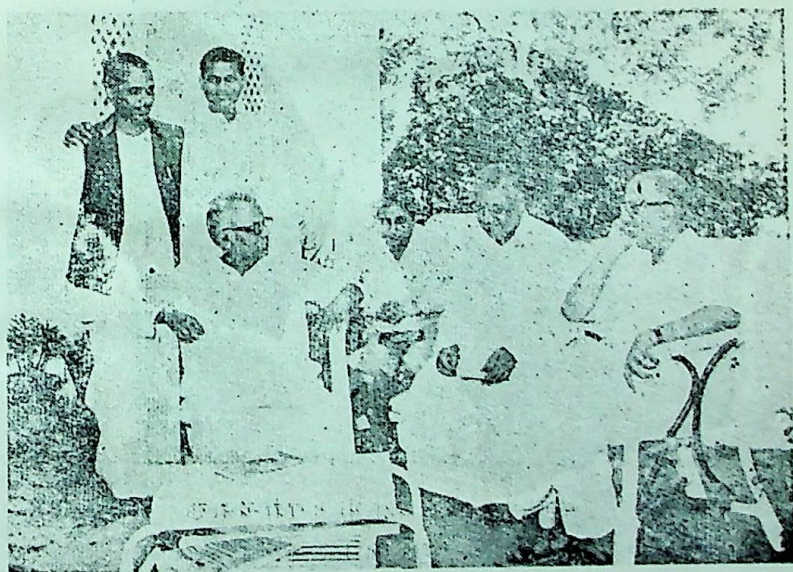
श्री राजनारायण, रविराय आदि के साथ ।
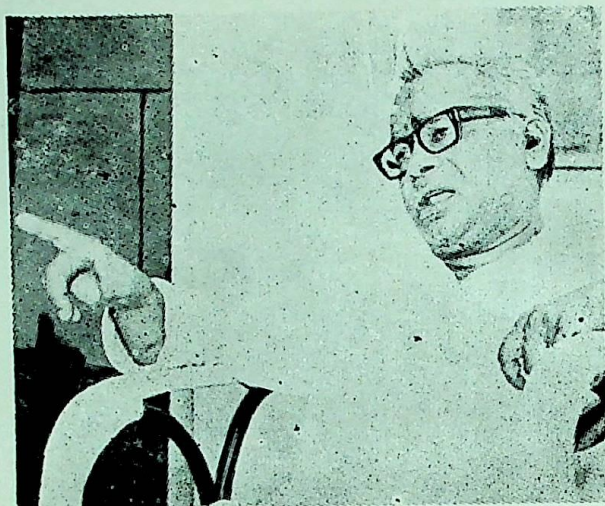
१०–जिन्दा भूखा इन्सान पांच साल इन्तजार नहीं कर सकता ।
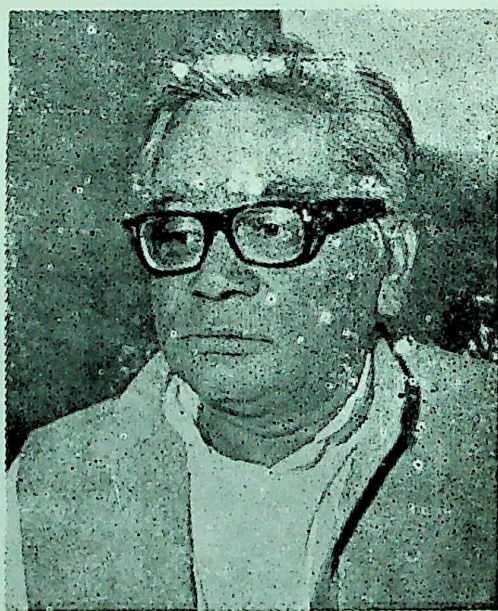
श्मशानघाट पर—यहां भी गरीबी-अमीरी का फरक ।

११–लोहिया के बाद ।

ओह ! इतनी गरीबी जहां इन्सान गोबर मे
दाना निकाल कर पेट भरे ।
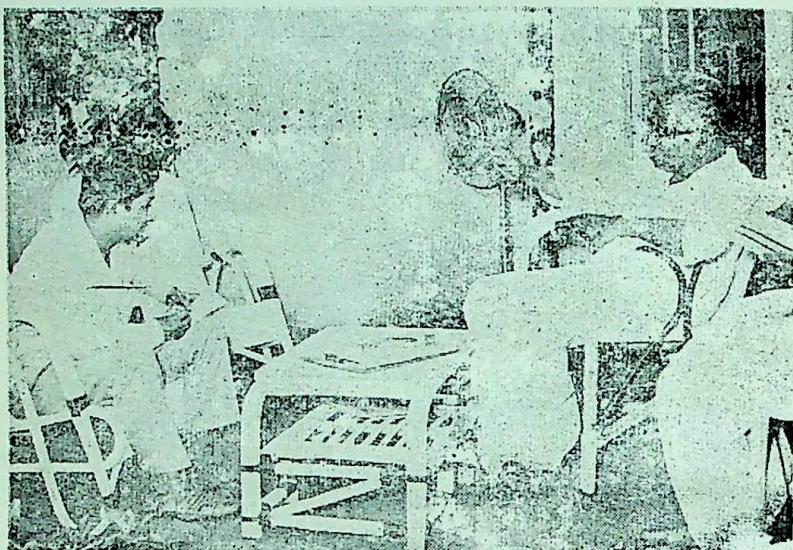
१२–प्रश्नों का जबाव ।
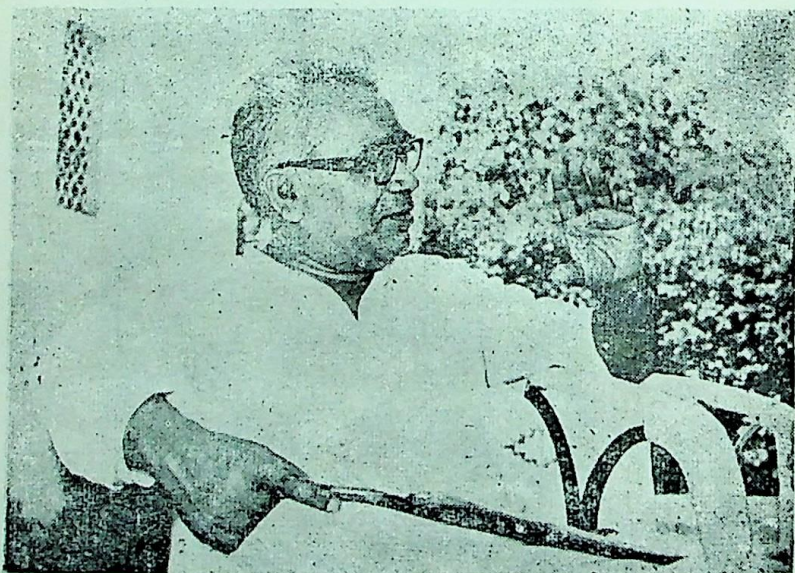
खुशी की मुद्रा में—शाम के वक्त खुले मैदान में ।
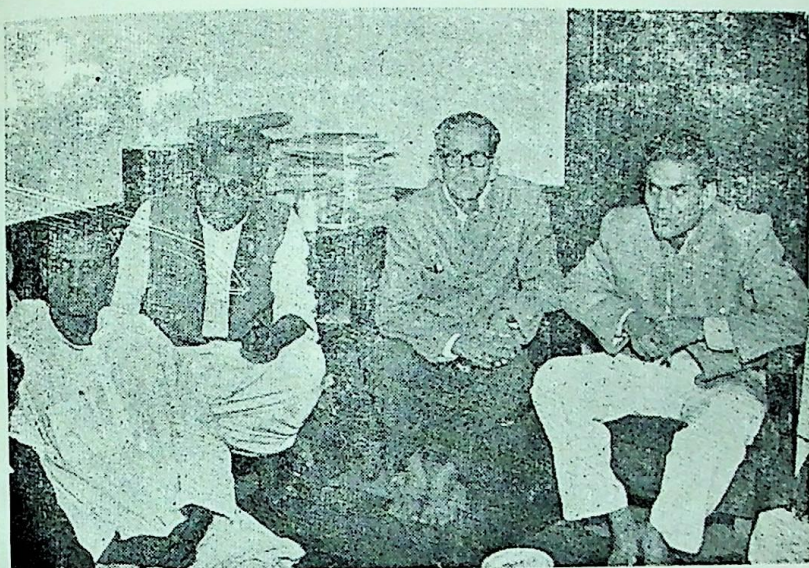
१३—आपरेशन के कुछ ही दिन पहले ।
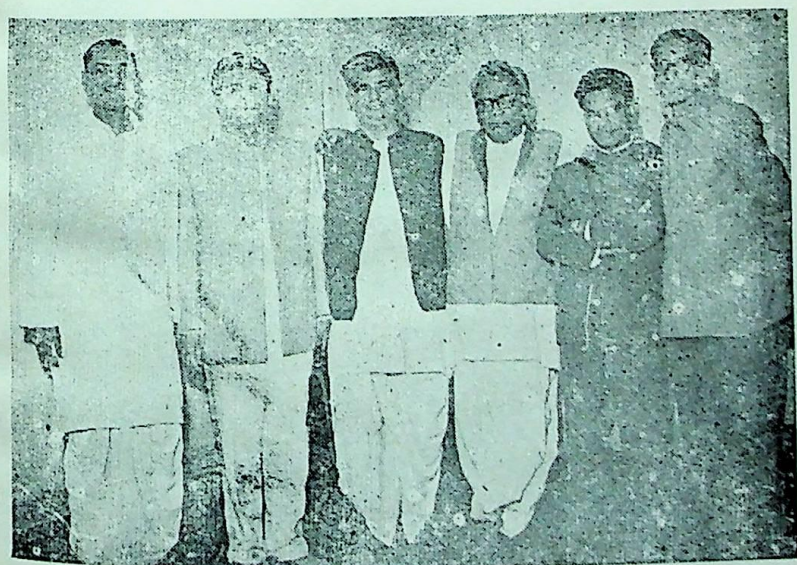
श्री रामसेवक यादव, मधु, बागड़ी, जोशी जी आदि के साथ ।

१४–संसद में जाने के पहले—प्रश्नों पर एक दृष्टि।
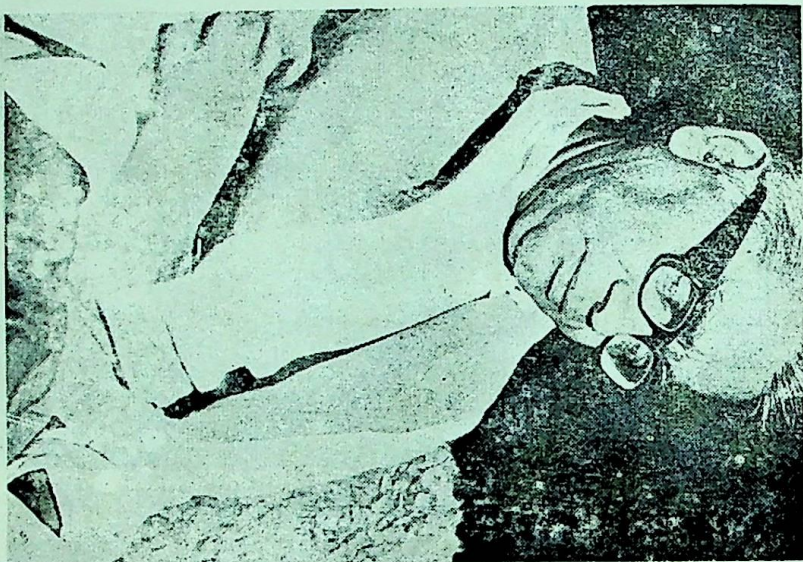
संसद की तैयारी में।
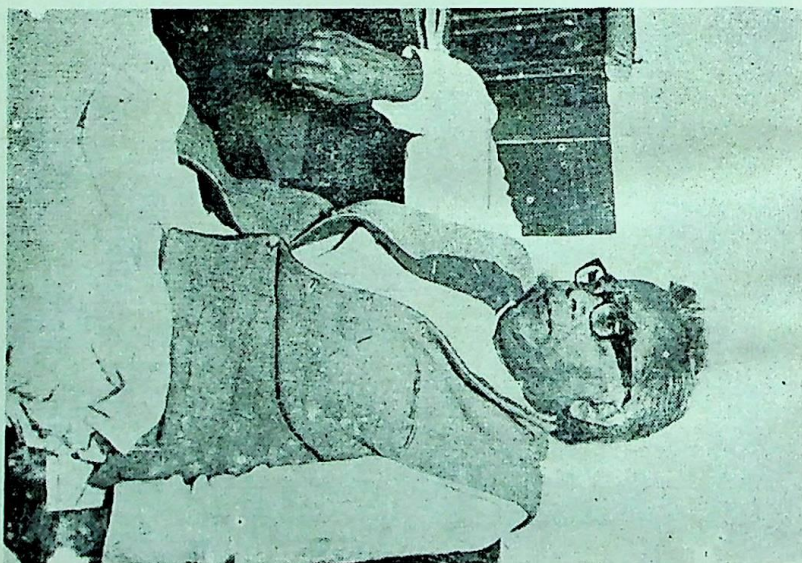
१५–मेरी राय में कांग्रेस का दौर अधिक-से-अधिक दो साल का और है। १९६७

१६–विरोधी राजनीति का
सिमटन जनसंघ के मंच से

लोहिया एक और लड़ाई

लोहिया की मौत से दुखी श्री कर्पूरी ठाकुर, प्रभावती जी, कामराज, जयप्रकाश आदि ।

१७–दुःखी युवजन ग्रौर युवती
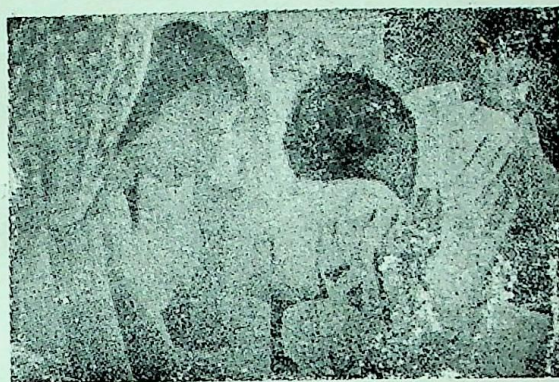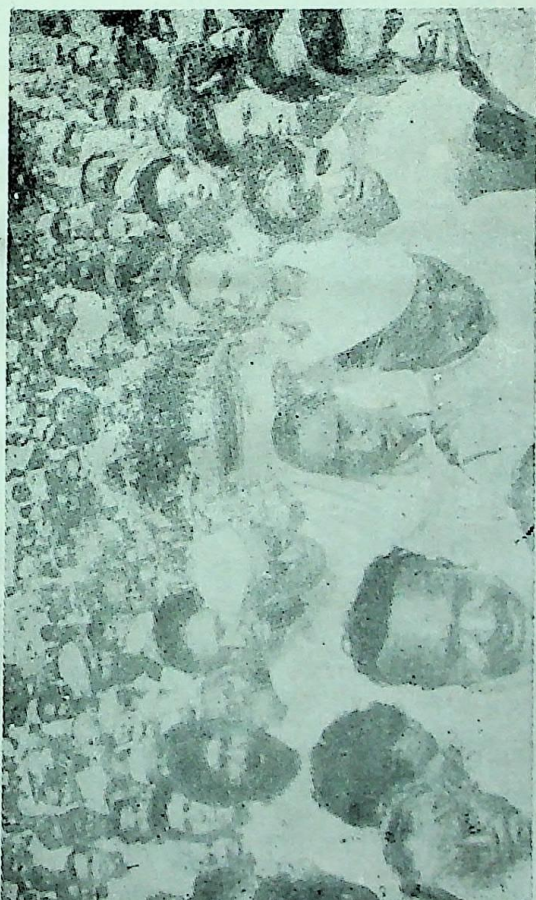
ग्रर्थी को कंधे पर लिये, रामसेवक यादव, जगदीश जोशी, ग्राचार्य कृपलानी, मोरार जी देसाई, मनीराम बागड़ी, चाह्वाण ग्रौर विलाप करते लोग।
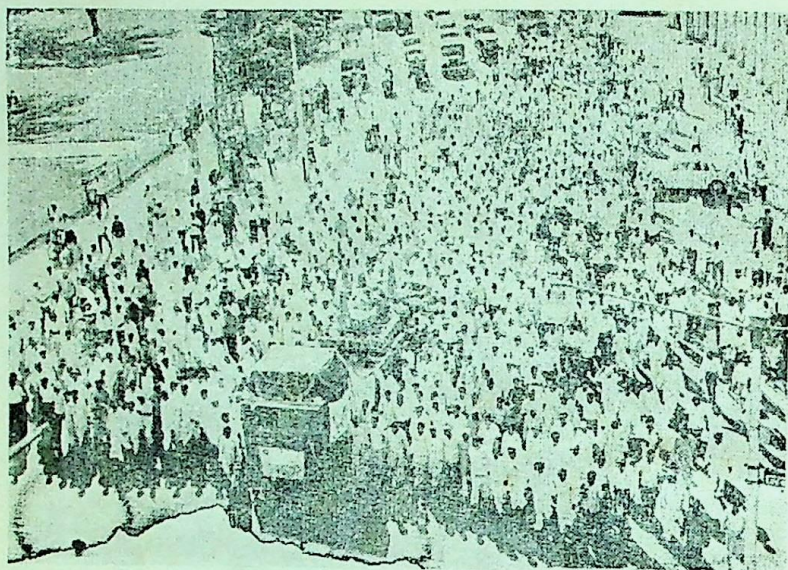
१८—अन्तिम यात्रा

सोते को जगाने वाला पहरुआ स्वयं ही सो गया।

मैं लाहौर किले के अपने लम्बे अनुभवों को विस्तृत रूप से बताना चाहता......मैं यह बतला देना चाहता हूँ कि मुझे चार महीने से अधिक यातना दी गई। रात-रात दिन-दिन मुझे जगाया जाता था। और सबसे लम्बा अर्सा लगातार १० दिन तक का है। जब मैं पुलिस का विरोध करता था तो मुझे हाथ-पैर बाँध कर चटाई दार फर्श पर घसीटा जाता था। इस शारीरिक क्रीड़ा के सीखने में मुझे कुछ समय लगा और इस पाठ को मैं कभी भुलाना नहीं चाहूँगा कि कोई भी यातना असहनीय नहीं है।

मेरे देश की दो तीन साल में और दुर्दशा हुयी है। हजारों की संख्या में लोग गोली के शिकार हुये। औरतों को पेड़ों में लटका दिया गया या सड़कों पर बलात्कार किया जाता है। लेकिन यह विचित्र बात नहीं है। आधुनिक इतिहास में अगस्त का विद्रोह बेजोड़ हैं। तीस-चालीस लाख आदमी कृत्रिम अकाल में मर गये। पिटाई तो १५ साल से चल रही थी। मेरे पिता, जो दो सप्ताह पहले एक बस में मर गये, को दर्शन साल्ट डिपाट के पूर्णतय शांत रोड पर बेहोशी की हालत में पीटा गया। मुझे खेद है कि उनके साथ रहने का काफी समय नहीं मिला। उनको बारम्बार जेल जाने से छुटकारा मिल गया......।

इस समय अपने रिहाई की मुझे इच्छा नहीं है। मुझे जेल में रखने के लिये ब्रिटिश सरकार का स्वागत हैं जब तक वह इस देश में रहेगी। लेकिन वास्तविकता यह है कि आपकी संसदीय पार्टी में ऐसा कोई नहीं हैं जो तथ्यों के साथ आपके सेक्रेटरी से कहे कि वे झूठ बोल रहे हैं। न ही उन्होंने अभी तक मुझे मुकद्दमे के लिये पेश किया है, न ही वे करेंगे और उन्होंने अपनी आदतों के अनुसार ऐसा बयान मेरी नजरबन्दी को बढ़ाने के लिये दिया है।

शासक देश के प्रति गुलाम देश से लिखना सभी निरर्थक होता है लेकिन मुझे आशा है कि आपने स्वयं अपने आप से पूछा होगा कि मैंने यह पत्र संसदीय पार्टी को क्यों नहीं लिखा।

कृपया मेरा हार्दिक अभिगंदन स्वीकार करें।

आपका
राममनोहर लोहिया

(ब्रिटिश मजदूर पार्टी के अध्यक्ष और प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ प्रो० हैरल्ड जे० लास्की को, सन् १९४२ के क्रान्तिकारी नजरबन्दी कैदी डा० लोहिया के पत्र का कुछ अंश)

मूल्य